लघु-उपन्यास

प्रगति प्रकाशन मास्को

अनुवादक – मदन लाल 'मधु'

चित्रकार – य० इल्यूश्चेंको

МУХТАР АУЭЗОВ

СТЕПНОЙ ТАБУНЩИК

Повесть

На языке хинди

बड़े ने छोटे भाई को हाथों में ऐसे उठा लिया मानो वह बच्चा हो और झटपट बिस्तर ठीक करती हुई अपनी पत्नी से कहा :

"इस मे तो न हाड़ है न मास। बिल्कुल कांटे-सा है, हल्का-फुल्का, रूई के गोले जैसा... ओह, क्या हाल कर डाला है उन्होने इस बाके नौजवान का!"

बिस्तर था—जाड़े के झोंपड़े मे मिट्टी की कच्ची दीवार के साथ बिछा हुआ तीन-चार तहवाला रूई का गद्दा। बीमार को बहुत सावधानी से दायी करवट लिटा दिया गया।

बडा भाई जब तक उसे हाथों में उठाये रहा, उन्ही कुछ क्षणों में रोगी बदहाल हो गया, उसे सांस लेने में तकलीफ होने लगी और उसने अपने बेजान होंठो को बड़ी मुश्किल से हिलाया-डुलाया। भाई और भाभी ने उसकी बात सुनने के लिए उसके मुंह के साथ अपने कान लगा दिये। फिर भी शब्दों के बजाय उसके होंठों की हरकत से ही उन्होने उसकी बात का अनुमान लगाया। उसने कहा :

"मरियल घोड़ा—जैसे हवा मे रोयां"...

"मरियल पति – जैसे चलती-फिरती छाया," दुख से गहरी सास लेते हुए नारी ने कहावत को पूरा किया।

बड़े भाई का नाम था बाख़्तीगुल और छोटे का तेक्तीगुल। नारी थी – हातशा।

काली-काली मूछें, चौड़ी छाती और मजबूत कधे – ऐसा था बाख़्तीगुल। वह सिर झुकाकर बीमार के पास बैठ गया। अभी पिछली पतझर में ही तेक्तीगुल का सूरमाओं जैसा डील-डौल देख लोग दांतों तले उगली दबाकर रह जाते थे। वह अपने भाई से सिर भर ऊंचा, हट्टा-कट्टा और तगड़ा था। पर अब कम्बख्त बीमारी ने उसकी जान ही निकाल ली थी। नौजवान की ताकत ऐसे ही जाती रही थी, जैसे बड़े घाव में से ख़ून।

पहले तो नंगी चट्टान भी उसे नर्म लगती थी और अब गद्देदार बिस्तर भी सख्त महसूस होता था। मीन-मेख निकालता रहता और बार-बार बिस्तर ठीक करने को कहता। उसे हाथो मे उठा लेना तो मानो बच्चो का खेल था। मगर पहले तो कोई उसे ज़मीन से हिला तक नही पाता था।

बरबस किशोरावस्था के उस भयानक साल की याद आती है, जब आज की भांति ही बाख़्तीगुल को अपने छोटे भाई को लादकर ले जाना पड़ा था। तब बड़े भाई की उम्र थी सोलह और छोटे की दस साल। दावानल की भांति टाइफाइड ने सारी स्तेपी, पड़ोस के सभी गावों को आ दबाया था। मा-बाप एक ही दिन चारपाई पर पड़े और फिर एक ही दिन दुनिया से चल बसे – मां सुबह को

और बाप रात को। दोनों भाई गाव से भाग निकले और जैसा कि मरते समय पिता ने नसीहत की थी, जिधर पांव ले गये, उधर ही चलते गये। जब छोटे भाई की टागों ने जवाब दे दिया, तो बडा भाई बची-बचायी ताक़त बटोरकर उसे अपनी पीठ पर लाद ले चला ताकि वे गांव से अधिकाधिक दूर हो जायें। तब बाख़्तीगुल ने भाई की जान बचाई थी, वह उनका पीछा करते हुए छूत के रोग से उसे दूर भगा ले गया था। मगर अब लगता है कि वह उसकी रक्षा करने मे असमर्थ है. .

तेक्तीगुल को बेचैनी सताती रहती थी, जवानी के दिनों की नही, मौत की बेचैनी।

"जड़ से काटे हुए पौधे मे हरे पत्ते नही आते," वह निर्जीव, धुधली-धुधली और डरावनी-डरावनी आखों से कभी भाई और कभी भाभी की ओर देखते हुए यही रटता रहा। "यह सब कुछ हमारी कम्बख़्त गरीबी का, हमारे अनाथपन का नतीजा है। लोगो ने नही, ग़रीबी ने मुझे मार डाला है, भाई। कैसे कटेगी तुम्हारी, मेरे बिना?"

जर्द होंठो मे बल पड़ गये और मानो उसकी आत्मा मे उमड़ता-घुमड़ता रहनेवाला तूफान बाहर आ गया:

"ओह, काश मैं बदला ले सकता... अपनी मौत का नही, अपमान का..." वह फुसफुसाया और उसने क्रोध तथा बेबसी की सिसकी भरी। दीवार की ओर मुंह फेरकर वह बूढ़े-खूसट की तरह खासने लगा।

आज हातशा अपने को वश में न रख सकी। उसकी आंखें छलछला आईं और वह कह उठी:

"कमीने न हों तो! हाथ-पैर टूट जायें कम्बख़्तों के! मारते रहे, मारते रहे... बुरा हाल कर डाला इसका मार मार कर... फिर कुछ तो दिया होता बदले में, कोई मरियल-सा बकरा ही। कोई भीख ही दे देते... बीमार को खिलाने-पिलाने के लिए।"

वाख़्तीगुल नपी-तुली बात करनेवाला आदमी था।

"भी... ख?" उसने घृणा और व्यंग्य से हंसकर कहा। उसकी घनी और काली मूछों के सिरे नीचे हो गये।

हातशा पति की बात समझ गई। उनके दुश्मनों के दिल में न तो दया थी और न परोपकार की भावना। हाथ से कुछ देना तो दूर—वे तो उसे एक नजर देखने को भी तैयार नहीं थे। तेक्तीगुल के साथ ऐसा जुल्म करनेवाले जानते थे कि इस हड्डियों के ढेर, इस रोगी को खाने-पीने को कुछ देने का मतलब होगा उसके सम्मुख अपने अपराध को स्वीकारना... अगर तेक्तीगुल भला-चगा नहीं होगा तो स्तेपी के प्राचीन कानून के मुताबिक उन्हे हत्या का मुआवजा चुकाना होगा। यही था वह, जिससे उन्हे डर लगता था।

वाख़्तीगुल को उस दिन से लेकर जब उसके देखते-देखते ही मां-बाप की आंखें बन्द हुई थी, अब तक के अपने सारे जीवन में एक भी ऐसा दिन याद नही था, जब अमीर लोगों ने न्याय से काम लिया हो।

उस भयानक वर्ष में टाइफाइड के चंगुल से तो ये दोनों बच निकले, मगर दुर्भाग्य के हाथों से नही बच पाये। काफ़ी भटकने-भटकाने के बाद उन्हे दूर के रिश्ते के मामों के घर

में सिर छिपाने की जगह तो मिल गई, मगर किस्मत ने साथ नही दिया। दोनो छोकरे धनी कोजीबाक वंश के गांव मे कड़ी मेहनत का जीवन बिताने लगे। कोजीबाक वंश के लोग बुर्गोन्स्क क्षेत्र मे भटकते रहते थे। पिछली पतझर में इन दोनों को कोजीबाक परिवार के सबसे छोटे बाई साल्मेन की सेवा करते हुए बीस वर्ष हो गये थे। बड़ा ही कठोर, बहुत ही संगदिल था यह मालिक!

नौकरी के सालों में बाख्तीगुल ने ख़ासी इज़्ज़त पा ली थी – वह घोड़ो के झुण्डों का बड़ा चरवाहा बन गया था, चरवाहो में ऊंचा दर्जा पा लिया था। हा, यह सही है कि धनी नही हो पाया था। उसकी जगह उसका मालिक – साल्मेन – जरूर मालामाल होता जाता था। कुशल बाख्तीगुल ने स्तेपी मे बाई के ढेरों घोड़े, बढ़िया और मजबूत नसल के सैकड़ो पशु पाले।

छोटे भाई तेक्तीगुल के साथ, जो घोड़ियों को दुहता था, बाई बहुत बुरी तरह से पेश आता। साल पर साल गुज़रते गये, जवानी बिना ख़ुशियों के आई और वैसे ही चली गई, मगर तेक्तीगुल की जिन्दगी जैसी थी वैसी ही रही। दिन को वह घोड़िया दुहता और रात को भेड़ों की रखवाली करता।

बाख़्तीगुल की किस्मत ने उसका साथ दिया – बाई ने उसकी शादी भी कर दी। पड़ोसी गांव के चरवाहे की बेटी हातशा उसकी बीवी बन गई, वह भी अपने पति के समान बाई साल्मेन, उसकी बीवी और मां की सेवा करने

लगी। बाख्तीगुल ने कोई दस वर्षों में जो कुछ कमाया था, वह सभी इस शादी की नजर हो गया। मगर वह करता भी तो क्या, बाई की ऐसी ही इच्छा थी। मगर तेक्तीगुल तीस वर्ष का हो गया था और अभी तक कुंआरा ही था।

बड़ी धाक थी इन दोनों भाइयों की अपने इर्दगिर्द के इलाके में। दिलेरी और जवांमर्दी के लिए बड़े मशहूर थे ये। बाई को इनमे एक और भी खास फायदा था। कोजीबाक वंश धनी था और इसलिए बहुत लालची भी, ताकत के नशे का दीवाना और ऐसा कि जिसकी भूख कभी मिटे ही नहीं। कोजीबाक वंश के लोग एक जमाने से "बारिम्ता" —यानी अपने जैसे लुटेरो और प्रतिद्वन्द्वियो पर धावा बोलने और उनके जानवर भगाने के लिए विख्यात थे। इस मामले में बाख्तीगुल और तेक्तीगुल बेमिसाल थे।

इन दोनों को काले-काले मोटे मोटे थमा और बढ़िया घोड़ों पर चढ़ाकर गुप्त धावे बोलने के लिए भेज दिया जाता। दोनों भाई बाई का हर हुक्म बजाने को तैयार रहते और जहा वह भेज देता, वहीं चल देते।

इनके मालिक साल्मेन का बड़ा भाई साट अपने हल्के का हल्केदार बनने का बहुत ही इच्छुक था और इसके लिए वह लोगों में फूट के बीज बोता रहता था। वह अपने हल्के में दल बनाता, उनमें दुश्मनी की आग भड़काता और इस तरह अपना उल्लू सीधा करता। मोटों की चोटों से जिगीतों यानी जवानों की हड्डियां टूटतीं, बाई साट हल्केदार

के ओहदे का मज़ा उड़ाता और बाई साल्मेन के पशुओं के झुण्ड और बढ जाते।

दूसरे वंशों के नौजवान वाख्तीगुल और तेक्तीगुल से डरते, उनकी ताकत से ईर्ष्या करते:

"वे तो आदमी नही—लट्ठ हैं, बड़े काले लट्ठ..."

ऐसा भी होता कि इनकी खिल्ली उड़ाई जाती:

"वे तो नौकर नही, दास हैं... दास-बंधु हैं।"

ख्याति नही, कुख्याती, नेकनामी नही, बदनामी कमाई थी इन्होंने। परायों की तो खैर, बात ही अलग रही, अपने ही गाव की बडी-बुढ़िया और बच्चे भी खुसुर-फुसुर करते हुए कहते:

"चले लड़ने को हमारे सूरमा, आदत के अनुसार...
लौटेंगे घर अपने रात को कर लूट-मार..."

मगर उन्हें तो बस एक ही बात की चिन्ता थी कि बाई खुश रहे! बाई की छाया मे बाई की इच्छा ही भगवान थी।

साल-दर-साल, जाड़े और गर्मी मे कोज़ीबाक वंश के लोग अधिकाधिक मोटे होते जाते और उनका लालच बढ़ता जाता। योंही तो उनकी सेवा नही करते थे वाख्तीगुल और तेक्तीगुल! चरवाहे-बंधुओ के सोटे थे भारी-भरकम, फंदे लम्बे-लम्बे, पर दिल थे बहुत नर्म-नर्म। बीस वर्ष बीत गये थे, मगर अब भी वे न तो कभी शिकवा-शिकायत करते और न काम से इनकार।

बाई साल्मेन उन्हे कुछ भी नही देता था। बाई और

भाइयो के बीच कभी वह करारनामा भी नही हुआ था, जो स्तेपी में प्रचलित था। इस क़रारनामे के मुताबिक एक खास अर्से मे चरवाहो को कुछ निश्चित पशु और कपड़े आदि देने की व्यवस्था थी... साल्मेन के यहां इस तरह के चोचलो की कोई गुजाइश नही थी। क्या वाई अपने दास का वाप और शुभचिंतक नही है? तिस पर वे तो रिश्तेदार भी है, वेशक मा के वंश की ओर से ही। रिश्तेदारो को मजदूरी नही, उपहार दिया जाता है।

इसी लिए तीस वर्ष का हो जाने पर भी तेक्तीगुल के पास कुछ भी ऐसा नही हो पाया था, जिसे वह अपना कह सकता। वाक़्तीगुल और हातशा की हालत उससे कुछ वेहतर थी...

छोटा-सा पुराना खेमा, तीन-चार घोड़े, दसेक भेड़ें—वस इतनी ही थी इनकी कुल जमा-पूंजी। इन तीन शक्तिशाली और चतुर व्यक्तियो ने अनेक वर्षों तक जोश और मेहनत से खून-पसीना एक कर और भारी जोखिम उठाकर वस यही कुछ कमाया था।

फिर भी ख़ुदा का शुक्र होता अगर अमीर लोग इन्साफ करना जानते, अगर उनके सीने मे कमीना दिल न होता।

पिछली पतझर की एक वरसाती रात की वात है। तेज हवा चल रही थी, पानी वरस रहा था कि एक भारी मुसीवत की बिजली गिरी। गांव भर मे चीख-पुकार, रोना-धोना और गाली-गलौज ही सुनाई दे रहा था। इस समय वाक़्तीगुल स्तेपी से घोड़ो के झुण्डो को वापिस ला

रहा था। बाई साल्मेन चीखता-चिंघाड़ता, ऊंट की तरह गुस्से से थूकता और जो भी सामने आ जाता, उसी पर कोड़े बरसाता हुआ गांव मे इधर-उधर भागा फिर रहा था। हातशा बुझे हुए चूल्हे के पास पड़ी हुई आंसू बहा रही थी और तेक्तीगुल का नाम ले लेकर ऐसे विलाप कर रही थी मानो वह इस दुनिया से चल बसा हो।

"कहां है वह?"

"ख़ुदा जाने..."

"जिन्दा है या नही?"

"ख़ुदा जाने..."

जाहिर है कि तेक्तीगुल था तो स्तेपी में ही। हुआ यह कि बवंडर के कारण भेड़ो का रेवड इधर-उधर बिखर गया और वे गाव से दूर भाग गई। तेक्तीगुल उनके पीछे नही गया और जब बाई कोडा लिये हुए भागा आया, तो जिन्दगी मे पहली बार वह अपने पर क़ाबू न रख पाया और उसने बाई के चर्बी से फूले हुए मुह पर ही यह कह दिया:

"देख रहे हैं न कैसी भयानक रात है... और मेरे तन पर न कपड़े हैं, न पैर में जूती। बस, यही एक चोगा है और वह भी पसीने से सड़-गल गया है, छेद ही छेद हुए पड़े है इसमें ... तन ढंकने के लिए कुछ पुराने-धुराने कपड़े ही दे दीजिये।"

साल्मेन ने तो ऐसी बात सुनने की कभी आशा ही न की थी। उसे तो मानो भारी धक्का लगा।

"भेड़े मर जायेंगी... बहुत बड़ा रेवड़ है। और तुम हो कि मोदेबाज़ी कर रहे हो?"

"मैं आपकी मिन्नत करता हूं...दया कीजिये..."

"कुत्ते का पिल्ला! अपनी चमड़ी की फिक्र पड़ी है इसे!"

तेक्तीगुल ने ऐसे ही बुझे-बुझे अन्दाज में मज़ाक़ कर दिया:

"बस यही एक तो है मेरे पास, सो भी आख़िरी..."

"तो कोई बात नही, मैं एक की तीन बना देता हू।"

बाई का इशारा पाते ही उसके पांच जवान तेक्तीगुल पर टूट पडे, उन्होंने उसे जमीन पर गिरा दिया और ख़ुद बाई पागल की भांति बूटो से उसकी छाती पर ठोकरें मारने लगा। इसके बाद उसे स्तेपी मे खदेड दिया। तेक्तीगुल ने कोई हील-हुज्जत न की। वह शर्म से पानी-पानी होता हुआ चल दिया और जाते-जाते अत्यधिक हताशा मे उसने केवल इतना कहा:

"पाप तुम्हारे सिर चढ़ेगा..."

बाई ने लाल-पीला होते हुए पीछे से ढेर-सारी गालियां बक दीं।

तेक्तीगुल को एक नजर देखते हुए भी लोगों का कलेजा कांप जाता था। बाई के बूटो की ठोकरों से उसका चोगा तार-तार हो गया और चीथड़े ठीक वैसे ही लटकने लगे थे जैसे खाल बदलते समय ऊंट के बाल। लेकिन लोग चुप्पी साधे रहे और बाई कोड़े से दास को खदेड़ता हुआ चीख़ता रहा...
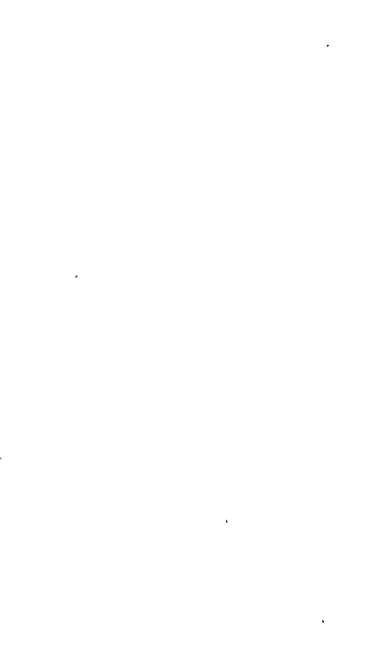
जाड़े वाले उस पुराने झोंपड़े में ही जाकर पनाह ली, जिसे बीस वर्ष पहले छोड़ कर भागे थे।

मगर उनके साथ ही साथ मां-बाप के घर में लुकी-छिपी मौत भी आई, वैसे ही जैसे कभी टाइफ़ाइड आया था। मौत आकर तेक्तीगुल के सिरहाने खड़ी हो गई।

जवान ने ऐसी चारपाई पकड़ी कि फिर उठा ही नहीं। जाड़े भर उसे ऐसे ज़ोर की ख़ूनी खांसी आती रही कि उसकी आतें बाहर निकलती प्रतीत होती। तेक्तीगुल गाढ़ा-गाढ़ा ख़ून थूकता रहता और ख़ून के जमे हुए टुकड़ों के *साथ-साथ ही उसकी ताकत भी निकलती जाती।*

पहले वह कभी किस्मत को भला-बुरा नहीं कहता था, कोसता नहीं था, मगर अब दांत भींच कर सारा दिन बुरी तरह पीटे गये पिल्ले की भांति कूं-कूं करता रहता। वह किस्मत को इसलिए नहीं कोसता था कि उसने अपनी ज़िन्दगी में कोई सुख-सौभाग्य नहीं देखा था, न बीवी मिली थी, न बच्चे हुए थे, इसलिए भी नहीं कि वह मरना नहीं चाहता था, बल्कि इसलिए कि अपने अपमान का बदला नहीं ले पाया था। तेक्तीगुल बचपन से ही बहुत उदारमना, बहुत ही सीधा-सरल था, झटपट लोगों की बात मान लेता था। और अब तो मानो गुस्से का भूत उसकी आत्मा में *आकर बस गया था।*

जाड़े में जब बफ़र्दी आयी, तो हालत की बात मानकर तेक्तीगुल सात्मेन के भाई साट के पास गया। वह

निष्कपट मन और दबी-दबी जबान से उसके पास शिकायत करने गया।

साट ने बहुत धैर्य से उसकी बातें सुनी और ऐसे विस्तारपूर्वक उसे उत्तर दिये मानो अदालती कार्रवाई हो रही हो :

"तुमने कहा कि भूखों मरते हो? यह अच्छी बात है कि तुमने मुझसे कुछ छिपाया नहीं। पर साल्मेन के यहां तुम लोग भूखों नहीं मरते थे? तुमने कहा कि वह मौत के मुंह की ओर बढ़ता जा रहा है? अच्छी बात है कि तुम किसी तरह की धूर्तता नहीं कर रहे हो। मगर जिसकी हत्या कर दी जाती है, वह फौरन मर जाता है और जिसकी पिटाई की जाती है, वह कभी नहीं मरता! लगे हाथों तुम्हारी भी थोड़ी-बहुत मरम्मत हो गई थी, मगर तुम जिन्दा हो... तुमने कहा कि वह बीमार पड़ा है? बस, यही तो है हकीकत और सच्चाई। मगर तुम तो जानते हो कि यह बीमारी क्या बला होती है! हममें से कौन इस बीमारी के पंजे में नहीं आता? कौन इससे नहीं डरता? मेरी और साल्मेन की सगी मां ख़ूब सुख-चैन का जीवन बिताती थी, दूध-घी में नहाती थी, मगर मरी तपेदिक से। इसके लिए तुम किसे अपराधी ठहराओगे? साल्मेन को या मुझे? या फिर अपनी बीवी हातशा को, जो अल्ला को प्यारी हो गयी हमारी मां की ख़िदमत और देख-रेख करती थी? अल्ला से तो कुछ छिपा नहीं है, तुमने मुझे वह कुछ कहने के लिए मजबूर किया है, जो

मुझे नहीं कहना चाहिए था। मगर तुम्हें ऐसी बातें कहने की जुर्रत ही कैसे हुई, किसने तुम्हें ऐसी पट्टी पढ़ाई है कि जो कुछ ख़ुदा ने जाता है तुम इनसान से उसे लौटाने के लिए कहते हो ?"

साट ने वाख़्तीगुल को कुछ भी कहने-सुनने का मौका न दिया और अपने घर से चलता कर दिया। वाख़्तीगुल मन ही मन कड़वे घूंट पीता और हालात तथा अपने पर हंसता हुआ वहा से चला गया।

वसन्त के शुरु में ही तेक्तीगुल इस दुनिया से चल बसा। उसकी कम होती हुई ताकत के साथ-साथ उसकी ज़िन्दगी का चिराग भी मन्द होता गया। आख़िर उसकी आखों का धुधला-सा प्रकाश गायब हो गया।

वाख़्तीगुल बहुत दिनों तक शान्त नहीं हो पाया, बहुत दिनो तक भाई की याद में रोता-धोता रहा। उसने चालीस दिन तक मातम मनाया और चालीस दिन होने पर सार वंश के अपने थोड़े-से और गरीब रिश्तेदारों को जमाकर और अपनी आख़िरी पूंजी ख़र्च कर रस्म-रिवाज के मुताबिक भाई का शोक मनाया।

इस अवसर पर एकत्रित लोगों ने कहा कि दिवंगत बबर था। उसकी यातनाओं की चर्चा की गई। यह भी कहा गया कि सार वंश अनाथ हो गया, कि उसमे सूरमा नहीं रहा।

"और मैं तो लुंज-पुंज हो गया..." सिर झुकाये हुए वाख़्तीगुल सोच रहा था। उसका दिल ख़ेमे की भांति ही सूना-सूना और वीरान था।

२

पतझर आई तो वाल्तीगुल ने एक ख़तरनाक काम करने की ठानी। उसने अंधेरी-बरसाती रात चुनी, मशक में दही मिला सूप भरा और उसे घोड़े की काठी के साथ लटकाकर पहाड़ों की ओर बढ चला, उसके साथ हो ली उसकी पुरानी संगिनी और सलाहकार—भूख।

घोड़े पर जाता हुआ वाल्तीगुल सोच रहा था :

"चिर-प्रतीक्षित पतझर आ गई... बारिश शोर मचा रही है, बारिश नज़र के सामने पर्दा डाल रही है, बारिश पद-चिह्नों को मिटा रही है... अगर किस्मत ने साथ दिया तो सुबह होते तक उसे तीन दर्रों के पार ले जाऊगा। क्या मैं बेकार ही ख़ाक छानता फिर रहा हूं, उसका पीछा कर रहा हूं, उसकी घात में हूं?"

रात के अन्धकारपूर्ण आकाश की छाया में पहाडों ने बहुत ही विराट रूप धारण कर लिया था। वाल्तीगुल बड़ी मुश्किल से ही पगडंडी को देख पा रहा था, मगर चट्टानी पर्वतमाला और जंगलों से ढकी ढालें साफ दिखाई दे रही थीं। चरवाहे की नजर कुत्ते की नज़र की तरह तेज़ थी। और ये जगहें थीं उसकी जानी-पहचानी, ऐसी, जहां वह बार-बार आया-गया था, उसकी बहुत ही प्यारी जगहें थी ये।

दूरी से देखने पर दिन के समय पर्वत दैत्यों के पत्थर के खेमों के समान लगते थे, एकदम वीरान-सुनसान और इन-

सानो के लिए अगम्य। निकट से और रात को वे दूसरा ही रूप धारण कर लेते थे—दहशत पैदा करनेवाले जीवधारी का। ढालो पर खड़े ऊंचे घने फर वृक्ष एक अतिकाय, उनींदे और चैन से सांस लेते हुए राक्षस की चमड़ी जैसे प्रतीत होते थे। घाटिया जानवरों के तने हुए नुकीले कानो जैसी लगती और खड्ड जानवरो के खुले हुए जबड़ों जैसे, ठंडी-ठंडी और मौत की सी सांसें छोड़ते हुए और उनमें से उभरे हुए होते बड़े-बड़े चट्टानी दांत।

मगर बाख़्तीगुल को यहां डर नही लगता था। पर्वतों से तो उसका जन्म का नाता था। वे ख़ामोशी और चैन से उसका स्वागत करते थे, उसे अपनी ओर बुलाते थे और मानो कहते थे—बढते जाओ, जल्दी करो, हम तुम्हे छिपा लेगे।

यह सच है कि पतझर की रात में, विशेषत: बरसात के समय, इस पगडंडी पर बहुत भरोसा नही किया जा सकता था। इसलिए उसने हिचके बिना अपनी जान को घोड़े के हवाले कर दिया। उसका घोड़ा मजबूत, अनुभवी और ढालों पर चढ़ने-उतरने का आदी था। उसके कदम सधे हुए थे और वह पहाड़ी बकरे की भांति चतुर था। कहीं-कही पर तो पगडंडी धागे की तरह पतली हो जाती थी, उस पर दो सुमों को एकसाथ टिकाना भी कठिन हो जाता था, मगर घोड़ा इत्मीनान से नपे-तुले कदम रखता और फुर्ती से बढ़ता चला जा रहा था। वह न तो दाईं ओर की बढ़ी हुई चट्टानो के साथ अपनी बगल सटने देता और न

ही डरी-सहमी आंखों से दाईं ओर के खड्ड को देखता। वह तो रस्से पर चलनेवाले नट की भांति चला जा रहा था। घोडा मञ्जिल पर पहुंचा देगा! उसे मालूम है कि मालिक कहा जाने की ठाने हुए है। जब बाख़्तीगुल चिन्ता या ख़तरे के अपने भाव को जाहिर करते हुए उसके अगल-बगल अपने पैर सटा लेता, तो घोड़ा सिर झटकता और लगामों को झटका देकर *मानो यह कहता कि मैं सहमत नही हूं।* काठी के नीचे धीरे-धीरे हिलती हुई उसकी पीठ मानो तसल्ली देती – जब तक मंजिल पर न पहुंचा दू, चैन से बैठे रहो और वहा तुम जानो और तुम्हारा काम...

बाख़्तीगुल घोड़े पर जा रहा था और सोच रहा था – अपने बारे मे, घोडे और उनके बारे में, जिनसे उसकी मुलाकात होनेवाली थी :

"ऐसा मौसम तो तुम्हे भी पसन्द नही आ रहा होगा। बरसात में तो हम सभी बेघर कुत्तों की तरह होते है। देखेंगे कि कौन मैदान छोड़ता है, दुम दबाकर भागता है... साल्मेन के परिवार के लोग हों या कोज़ीबाक वंश के दूसरे लोग हों – सब बराबर है! सारा कोज़ीबाक वंश ही मेरा ऋणी है।"

अन्तहीन रात बीती और बादल-बरखा का छोटा-सा दिन और भी अधिक लम्बा प्रतीत हुआ। बहुत देर से और धीरे-धीरे हुई उषा से झुटपुटा होने तक बाख़्तीगुल देवदार की गन्धवाले और घने जंगल मे छिपा रहा, ऊंघता रहा। जंगल अन्धकारपूर्ण था, सुनसान था और उसमें से कड़वी-

मीठी गन्ध आ रही थी। मगर वाप़्तीगुल को खाली पेट नींद नहीं आई। भेड़िये के पेट के समान वाप़्तीगुल के पेट ने भी दगा दिया। मशक खाली हो गयी। ऐसी ख़ुराक से भला मर्द का क्या बनता है? पेय... वह तो गले के लिए होता है, पेट के लिए नहीं। प्यास जैसे कम होती है भूख वैसे ही और अधिक परेशान करने लगती है।

वाप़्तीगुल ने अन्धेरा होने तक बड़ी मुश्किल से इन्तज़ार किया। उसके मन का ऊहापोह ख़त्म हो गया। वह तो केवल एक ही आवाज सुन रहा था—अपनी गुप्त सलाहकार, अपनी स्थायी संगिनी—भूख—की आवाज।

"साल्मेन के घरवाले या उन्ही के सगे-सम्बन्धी... ख़ुद साट ही को होने दो... कोई भी क्यों न हो!"

घोड़ो के झुण्ड अभी तो पहाड़ी चरागाहो मे होंगे। अभी उनका स्तेपियों मे नीचे आने का समय नही हुआ। आज रात को वहां, आकाश को छूते हुए चरागाहों में ही उनसे मुलाकात होगी... ख़ुदा जानता है कि अपराधी कौन है...

फिर भी वाप़्तीगुल के दिल की गहराई में सन्देह रेंग रहा था।

"पहले तो साल्मेन अपनी सफाई दे न!" उसने सोचा। मगर जो कुछ मन में ठानी थी, उसे करने के पहले उसने अपनी सफ़ाई देनी चाही।

"मेरे घर में तो सिर्फ मुट्ठी भर सत्तू है..." उसने घोड़े के कान मे फुसफुसाकर कहा—"पूरे परिवार के लिए

मुट्ठी भर सत्तू... बच्चों ने मुझे यहां भेजा है, वे बिल्कुल निर्दोष हैं..."

आधी रात को घोड़ा तेज़ी से चलने लगा। पगडंडी अधिक चौड़ी हो गई, पहाड़ी चरागाह निकट ही था। वाख्तीगुल ने अपने सम्मुख विस्तार अनुभव किया। वह रंग में आ गया, उसने अपनी थकी और ठिठुरी हुई पीठ सीधी की। वाख्तीगुल और घोड़े में नयी शक्ति, नई दिलेरी आ गई।

अब घुड़सवार मजबूत छातीवाले ऐसे बड़े पक्षी के समान लग रहा था, जो धीरे-धीरे अपने पख फैलाता है। यह पक्षी इन जगहों का पुराना निवासी है, इन पहाड़ी चोटियों और बर्फीले रुपहलेपन का स्वामी है। बस, बस, वह अपने पंख फैलायेगा, आकाश में उड़ान भरेगा और अला-ताऊ के चट्टानी पिंडों और अतल खड्डों पर हवा में निश्चल होकर शिकार की खोज करेगा। अचानक वह कही अपनी नजर टिका लेगा, तीर की भाति सरसराता हुआ नीचे झपटेगा, शिकार को पकड़कर अपने इस्पाती पजों में मसल डालेगा।

वाख्तीगुल को जवानी के दिनो की वह उन्मादी और नशीली अनुभूति हुई, जब वह कोज़ीवाकों के इशारे पर रातों को हल्ला बोला करता था। तब वह अपने को ऐसा ही पक्षी अनुभव किया करता था, बेतहाशा उड़ता था, कुछ भी सोचे-विचारे बिना जो भी सामने आ जाता, उसी से भिड़ जाता था। उसके साथ होता था उसका भाई तेक्तीगुल, बाल-सुलभ सरलता और सूरमा की शक्तिवाला किशोर।

नही, वे बकरो जैसे बुद्धू नही थे, कि योंही दूसरों से सिर टकराते फिरा करे। उन्हें सुराग लगाना, घात मे बैठना, चकमा और धोखा देना, यह सभी कुछ आता था। वे सोये हुए के ऊपर से ऐसे घोड़ा कुदा ले जाते थे कि उसकी आख न खुले और जागते हुए की आंखो मे धूल झोंककर उसके सामने से निकल जाते थे। वे बहुत चुस्त, चालाक और समझदार थे। इनमे न केवल काफ़ी ताकत ही थी, बल्कि अक़्ल का मेल हो जाने पर तो सोने मे सुहागा हो गया था। इसके अलावा ये अपनी धुन के भी बड़े पक्के थे। अगर किस्मत साथ न देती, तीर निशाने पर न बैठता, तो काम अधूरा छोड़कर कभी न लौटते, खूब डटकर लड़ते, अकेले-अकेले दो-दो तीन-तीन से भिड़ जाते।

काश कि वाक़्तीगुल में अब वह पहले का सा जोश होता, उकाब की सी वह चुस्ती-फुर्ती होती। नही, इनका तो अब नाम-निशान भी बाकी नही रह गया था। उसे अपने दिल में कही कोई तार टूटता-सा, कही कुछ छिन्न-भिन्न होता-सा प्रतीत हुआ।

पर अब सोच-विचार करने का वक़्त नही था। वाक़्तीगुल ने चरवाहे की विशेष अनुभूतिशीलता से ही नर्म और गीली घास पर घोड़ों के बड़े झुण्ड की अदृश्य गति को अनुभव कर लिया। घोड़े अभी दर्रे से परे चर रहे थे, मगर वाक़्तीगुल को बरसात के शोर और हवा की सरसराहट के बीच से ही उनकी आहट मिल गई थी।

अगर यहा अनुभवी रखवाले हैं, तो वे झुण्ड के आसपास ही चक्कर लगाते होंगे ताकि उन्हे पदचाप अच्छी तरह से सुनाई दे और वे अजनवी को जल्दी से पकड़ लें। ऐसों को तो अंधेरी रात मे भी चकमा देना बहुत कठिन होता है। वाख़्तीगुल ने लगामें कस ली कि पत्थरों पर उसके घोड़े के नाल न बज उठें, कि बहुत समय तक एकाकी रहने के कारण घोड़ों के झुण्ड को देखते ही वह हिनहिना न उठे। सुस्ती करना घातक हो सकता था। चोरी-चकारी के काम मे चुस्त और दृढ-संकल्पी ही सफल होते हैं। वाख़्तीगुल घोड़े की लगाम कसे हुए था, उसे सिर नही झुकाने दे रहा था। वह ख़ुद भी चौकस हो गया, अब कुछ भी तो हो सकता था। उसकी छोटी-छोटी आखें पक्षी की आंखों की तरह फैल गई थी, गोल-गोल हो गई थी मानो अन्धेरे में सचमुच ही सब कुछ देख सकती हों।

झुण्ड चरागाह वाली ढाल पर धीरे-धीरे वाख़्तीगुल की ओर ऊपर जा रहा था। घोड़ों के झुण्ड और वाख़्तीगुल के बीच बहुत ही थोड़ा फासला था। वाख़्तीगुल किसी एकाकी चट्टान की ओट में निश्चल हो गया। घोड़े नथुने बजाते और होंठ फड़फड़ाते हुए मिल-जुल कर रसीली घास चर रहे थे। बछेरों की ख़ुशी और उछाह से भरपूर हिनहिनाहट दूर तक सुनाई दे रही थी। अपने-अपने झुण्डों के चिन्ताशील, चौकन्ने और लड़ाकू स्वामियो अर्थात् बड़े घोड़ों की आवाज तो कभी-कभार ही सुनाई देती थी। घड़ी भर को घोड़ों के झुण्ड का चमकता हुआ और मोटा-सा धब्बा

वाक्तीगुल की आंखों के सामने साफ झलक उठा। वह यह सोचकर काप उठा – कही सवेरा तो नही हो गया। नही, नही, ऐसा कुछ नही था। झुण्ड बहुत बढ़िया था, बहुत ही बढिया।

वाक्तीगुल ने टोपी उतारकर जीन के सिरे पर टांग दी। अपनी लम्बी मूछ को चबाते हुए उसने आहट ली। उसे सब कुछ ठीक-ठाक लगा। चरवाहे या तो शैतानों की तरह चालाक हैं, या फिर नींद का मजा ले रहे हैं। वहा न तो कोई दिखाई दे रहा था, न किसी की आवाज ही सुनाई पड़ रही थी। हा, मगर घोड़े सटे हुए चर रहे थे, यह बात उसे चौकन्ना होने के लिए मजबूर करती थी। संयोग से ऐसा नही होता। किसी होशियार आदमी ने उन्हें इकट्ठा किया था, उनका बड़ा-सा झुण्ड बनाया था और हाथ को हाथ सुझाई न देनेवाली इस अन्धेरी रात में नई चरनी मे ले जा रहा था।

अचानक क्या हुआ कि आपस में सटे हुए घोड़ों के इस बहुत बड़े झुण्ड में से कुछ चंचल घोड़े अलग होकर उस चट्टान की ओर बढ़ गये, जिसके पीछे बाक्तीगुल छिपा हुआ था। वह उसी समय अपने घोड़े की पीठ पर लेट गया और उसने उसे अपनी थूथनी घास की ओर झुका देने के लिए विवश किया। घोड़े अलग-अलग हुए, इधर-उधर बिखरे और फिर से बडे झुण्ड में जा मिले। अहा! यह लो, एक घोड़ा अपने छोटे-से झुण्ड को अलग ले गया। सम्भवतः पास मे कोई चरवाहा नही था...

वाख़्तीगुल ने फौरन अपने घोड़े को हल्की-सी एड़ लगाई। घोडा उसी क्षण बहुत धीरे से, मानो घास चर रहा हो, झुण्ड की ओर बढ चला।

यह छोटा-सा झुण्ड फ़ौरन चौकन्ना हो गया और एक ओर को हटने लगा। वह इस अकेले और अजनबी घोड़े को अपने पास नही आने देना चाहता था। लम्बे अयालोंवाले सुन्दर कत्थई घोड़े ने, जिसके इर्दगिर्द पूरा झुण्ड जमा था, सिर ऊपर को झटका और धीरे से जरा हिनहिनाया। उसने तो मानो पूछा: "तुम कौन हो?" जाहिर है कि आदमी की ओर भी उसका ध्यान गया था।

अनुभवी और सधे हुए कान तो फ़ौरन घोड़े की इस भारी आवाज का अर्थ समझ जाते! इसमें धमकी और चुनौती थी। कही कोई चरवाहा उसे सुनकर यहा न आया! मगर वाख़्तीगुल का घोड़ा ठीक समय पर थोड़ा हट गया और वाख़्तीगुल ने ऐसा ढोंग किया मानो वह ज़ीन पर लेटा हुआ ऊंघ रहा हो। शान्त होकर घोड़े ने सिर नीचे कर लिया।

शुरू में तो वाख़्तीगुल को इस छोटे-से झुण्ड के घोड़े तुच्छ-से प्रतीत हुए—एक साल, दो साल के बछेरे जैसे। रात के समय उनके बिल्कुल करीब जाये बिना यह नही जाना जा सकता था कि वे मोटे-ताज़े हैं या नहीं। धीरे-धीरे वाख़्तीगुल का घोड़ा इस छोटे झुण्ड के करीब पहुंच गया और तब वाख़्तीगुल ने अपनी आंखों को लालच से सिकोड कर राहत की सांस ली। यह रही वह!

मुराद पूरी हो गई थी... उसके सामने मोटी-ताज़ी घोड़ी थी, इस छोटे झुण्ड में, शायद सारे झुण्ड में ही सब से अच्छी! उसके पुट्ठे बड़े मोटे-मोटे, गोल-गोल थे, अयाल कटे हुए। कत्थई घोड़े के क़रीब ही चरती हुई बहुत ही खूब थी वह...

वाक़्तीगुल ने जीन से बालों का बना हुआ फंदा उतारा। अब वह किसी तरह का ऊहापोह नहीं करेगा। जब समझदार और अपने काम को अच्छी तरह जानने-समझनेवाला वाक़्तीगुल का घोड़ा इस छोटे-से झुण्ड के बीच पहुंच गया और उसने अपने कंधे को घोड़ी से सटा दिया, तो वाक़्तीगुल ने अंधेरे में पहली ही बार अचूक फंदा फेंक कर घोड़ी की गर्दन को उसमें फांस लिया। ऐसे तो वाक़्तीगुल उड़ते परिन्दे को भी फांस सकता था।

घोड़ी बहुत ही उद्दण्ड थी—गर्मी भर न तो उसे लगाम पहनाई गई थी और न ही उसकी अगाड़ी पिछाड़ी बांधी गई थी। यह सनकी घोड़ी डर कर सिहरी और अपने झुण्ड से अलग होकर सीधी भाग चली। मगर वाक़्तीगुल का घोड़ा इसके लिए तैयार था—यह कोई पहला मौका थोड़े ही था! टिटकारी का इन्तज़ार किये बिना ही वह भी भगोड़ी के पीछे-पीछे तेज़ी से भाग चला। इस तरह उसने अपने मालिक के हाथ से फंदा नहीं निकलने दिया।

फुर्तीली घोड़ी देर तक अपना पूरा ज़ोर लगाकर इतनी तेज़ी के साथ सीधी दौड़ती रही कि वाक़्तीगुल के हाथ में पकड़ा हुआ फंदा तारों की भांति झनझनाता रहा।

बाख़्तीगुल बहुत सावधानी और ढग से फंदे को थामे रहा। उसने घोड़ी को इधर-उधर होने या फदे को हाथ से निकलने नही दिया। अपने घोडे की ओर वह कोई ध्यान नही देता था, चरवाहे का घोड़ा अपने-आप ही ठीक ढग से चला जा रहा था, घुड़सवार की मदद करता हुआ। दौड़ती हुई घोड़ी दुलत्ती चलाती थी, ठोकर खाती थी, पर जल्द ही थक गई। तब वह चक्कर काटते हुए झुण्ड की ओर लौटने लगी। अब बाख़्तीगुल ने उसे अपने हाथो की ताकत और चरवाहे की कमर की मजबूती दिखाई। फंदे को जोर से कसते हुए वह अपनी पीठ के बल पीछे की ओर लेट गया। फदे मे फंसी हुई घोड़ी ने दायें-बायें गर्दन झटकी और फिर उसकी चाल धीमी पड़ गई। इसके बाद वह सिर झुकाकर एकदम निश्चल खड़ी हो गई।

फंदे के तारो को बहुत सावधानी से समेटते और छोटा करते, धीरे-धीरे प्यार भरे तथा अधिकारपूर्ण शब्दों से घोड़ी को शान्त करते हुए बाख़्तीगुल उसके पास आया और उसने फुर्ती से उसे लगाम पहना दी। बरसात और पसीने से भीगे हुए घोड़ी के पुट्ठे पर हल्का-सा चाबुक सटकारते हुए वह उसे अपने पीछे ले चला।

बाख़्तीगुल से दूर हटते हुए झुण्ड के घोडे घबराहट से इधर-उधर नजर दौड़ाने, एक-दूसरे से सटने और रेल-पेल करने लगे। घोडों की इस रेल-पेल की ओर तो ध्यान जाना जरूरी था। और लीजिये, बाख़्तीगुल को अपने बिल्कुल सामने, बल्कि यह कहना अधिक सही होगा, अपने

ऊपर बड़े-से घोड़े पर सवार और बड़ा-सा लट्ठ लिए एक हट्टे-कट्टे आदमी की झलक मिली।

यह कहीं आंखों का धोखा तो नहीं? नहीं... वह रास्ते में निश्चल खड़ा था, टंडे की तरह, न हिलता था न डुलता था। वह सोच रहा था कि यह अपना है या पराया? जरूर भूसा भरा है उसके दिमाग में...

वाख़्तीगुल ने अपने घोड़े को ज़ोरदार एड लगाई और उसे आगे बढ़ाया। इस हट्टे-कट्टे आदमी ने चुपचाप अपनी लम्बी बांह बढाई और वाख़्तीगुल के घोड़े की लगाम पकड़ ली। आखिर उसकी समझ में बात आ गई! बहुत बुरा हुआ। वाख़्तीगुल यह कल्पना करके कांप उठा कि बालों का फंदा उसके कंधों को जकड़े हुए अपनी ओर खींच रहा है... मगर यह हट्टा-कट्टा बहुत ही अजीब ढंग से पेश आया। वह वाख़्तीगुल के घोड़े को मानो मरे मन से, बुझे-बुझे और ढीले-ढाले ढंग से पकड़े रहा। उसने अपना लट्ठ ऊपर नहीं उठाया। वह किसी चीज की प्रतीक्षा करते और ज़ोर से नाक सुडसुड़ाते हुए चुप रहा।

वाख़्तीगुल रकाबों में खड़ा हो गया, उसने टकटकी बांधकर उसे देखा और फिर अनचाहे ही ठठाकर हंस दिया। हा, तो उसके सामने साड़ नहीं, गाय थी। अरे, उसके सामने कोकाई खड़ा था, सुविख्यात सूरमा, घोड़े की सी अंधी ताकत और चूहे के दिलवाला जवान जिसे देखकर सभी को हंसी आती थी। कौन उसका मजाक नहीं उड़ाता था? कौन उसका उल्लू नहीं बनाता था?

"सिर तोड़ दूंगा... मिट्टी के माधो!" बाख़्तीगुल ने भयानक ढंग से फुसफुसाकर कहा। उसने कोकाई के चूहे जैसे सिर पर चाबुक मारकर उसकी टोपी नीचे गिरा दी।

बाख़्तीगुल ने बहुत धीरे से चाबुक मारा था। यह कहना अधिक सही होगा कि चाबुक मारकर उसका अपमान किया था। मगर कोकाई बोरी की तरह ज़ीन से नीचे जा गिरा और पहले से ज्यादा जोर से सुड़-मुड़ करता हुआ अपने घोड़े की ओट में हो गया। उसने तो चीखने-चिल्लाने और अपने साथियो को पुकारने तक की हिम्मत नहीं की। वह जानता था वे सदा की भाति उसकी खिल्ली उड़ायेंगे और बस, यही किस्सा खत्म हो जायेगा। उसके लिए तो ज्यादा अच्छा यही है कि चुप्पी साधे रहे, रात के अंधेरे में छिपा रह कर अल्ला से यह दुआ मांगे कि यह अजनबी जल्दी से जल्दी यहां से चला जाये।

बाख़्तीगुल ने लगाम झटकी और घोड़े को सरपट दौड़ाता हुआ बड़ी घाटी की ओर बढ़ चला जो चीड़ के वृक्षों से ढकी हुई थी। वहां वह बढ़िया ढंग से छिप सकेगा, वहां तो दिन के समय भी उसके चिह्न नही मिल सकेंगे...

हा, कोकाई—वह तो साल्मेन, ख़ुद साल्मेन का चरवाहा था! मतलब यह कि तीर ठीक निशाने पर बैठा था, लालची कुत्ते के दिल में जाकर लगा था। बेकार ही वह दो दिनों तक सन्देहों की यातना भोगता रहा...

बाख़्तीगुल का घोड़ा झुण्ड के गिर्द चक्कर काटता हुआ तेजी से उड़ा जा रहा था। घोड़ी भी अड़े-रुके बिना इसी

तेजी से, कदम से कदम मिलाये हुए साथ-साथ चली जा रही थी। उनके सामने ठंडी घाटी का मुंह खुला हुआ था। यहा दूसरा चरवाहा दिखाई दिया।

यह चरवाहा ऊपर से दर्रे की ओर से अपने बढ़िया घोड़े को सरपट दौड़ाये आ रहा था। बाक़्तीगुल का रास्ता काटते हुए वह जोर से चिल्लाया :

"ए, कौन है वहां? कौन हो तुम?!"

बाक़्तीगुल उसकी आवाज, उसके विश्वासपूर्ण रंग-ढंग से फ़ौरन उसे पहचान गया। यह कोई कायर, कोई बुज़दिल नही है। किसी सूरत भी बचकर नही जाने देगा। कभी तो ख़ुद बाक़्तीगुल भी इसकी जगह साल्मेन की नौकरी बजाता था। बाई जानता था कि किस पर भरोसा किया जा सकता है।

अपने घोड़े के अयालों पर झुकते हुए बाक़्तीगुल ने चुपचाप अपना लट्ठ तैयार किया। घोड़े को सरपट दौड़ाये आते हुए चरवाहे ने भी अपना लट्ठ सिर के ऊपर उठाया और पूरे जोर से चिल्लाया :

"ए भाइयो... जल्दी से इधर मेरी तरफ़ आओ! सुनते हो! .." उसके पीछे उसकी आवाज़ की प्रतिध्वनि गूज उठी।

इसी क्षण विभिन्न दिशाओं से अन्य चरवाहों की आवाज़ें सुनाई दी। जिस जल्दी से उन्होंने अपने साथी की पुकार का जवाब दिया, उससे साफ़ था कि वे सभी जाग रहे थे और थे भी बहुत-से। अंधेरे मे ही उन्होंने झटपट और

किसी तरह की भूल-चूक के बिना ही यह समझ लिया कि उन्हें किधर जाना चाहिये। प्रतिध्वनि ने उन्हें किसी तरह के भ्रम में नहीं डाला। बाख्तीगुल को अपने पीछे तेज घोड़ों की टापो की गूज सुनाई दी।

घोड़ों के झुण्ड के ऊपर 'मारो-पकड़ो' का भयानक शोर गूंज उठा। चरवाहे बुरी तरह से चीख़ते-चिल्लाते हुए मानो एक-दूसरे को बढ़ावा दे रहे थे ...वे अपने घोड़ो को उड़ाये चले आ रहे थे... घड़ी भर मे घोड़ो के शान्त और इशारों को माननेवाले झुण्ड में खलबली मच गई।

दसियों घोड़ों के सिर और अयाल एकसाथ ऊपर हो गये, लम्बी-लम्बी पूछें लहराईं और मानो हवा मे उड़ने लगीं। घोड़े गुस्से से एक-दूसरे को काटते थे, लाते मारते थे, दुलत्तियां चलाते थे और पिछली टांगों पर खड़े होते थे। अपनी घोड़ियो और छोटे झुण्डों को अलग करने की कोशिश करते हुए घोड़े इधर-उधर भाग-दौड़ रहे थे। घोड़ों की टापों के इस गड़बड़ शोर मे लोगों की आवाज़ें डूबकर रह गईं।

जैसे नदी की लहरे ढाल की ओर बढ़ने के पहले भंवर बनाती है, उसी भाति घोड़ों की पीठें घूम रही थी, चक्कर काट रही थीं। इसके बाद वे मिलकर एक हो गईं और जोश में आये मानो जुड़े हुए शरीरों का एक बड़ा-सा भंवर बन गया। यह भंवर अचानक एक भयानक और विनाशकारी धारा में बदलकर हजारों सुमों से धरती को रौंदता हुआ आगे बढ़ चला।

घोड़ो का झुण्ड ऐसे घबराया और डरा हुआ था मानो बाढ़ आ गई हो या आग लग गई हो। इसलिए वह रास्ता न पाकर चरागाहों मे अंधाधुंध भागा चला जा रहा था। घोड़े एक दूसरे से बगले रगड़ते, जुड़े हुए, और कमजोरों को गिराते और रौंदते हुए सरपट भागे जा रहे थे। बर्फ के ढेर से अलग जा गिरनेवाले कंकड़-पत्थरों की भांति दम तोड़ते हुए एक वर्षीय बछेरे झुण्ड से अलग और बेहोश होकर जमीन पर गिरते जा रहे थे।

प्रतीत होता था कि मानो बादलो की अन्तहीन और कानों के पर्दे फाड़नेवाली गड़गड़ाहट घाटी से दर्रे तक पहाड़ी चरागाहों और आसपास के पर्वतो के ऊपर फैलकर निश्चल हो गई है। यह भी गनीमत ही समझिये कि घोड़ो की यह लहर खड्ड की ओर नही बह रही थी।

एक के बाद एक चरवाहा रुका और वापिस मुडा। बहुत देर से उन्हे अपनी गलती का एहसास हुआ। उन में से किसी ने भी यह नही देखा कि वे किसका पीछा कर रहे हैं। अन्धेरे में वे किसी भी क्षण राह भटक सकते थे। घोड़ों का झुण्ड बड़ी मुश्किल से रोका और शान्त किया गया।

आखिर वे शान्त हो गये और घास चरने लगे। केवल अपने बछेरों को खोजती हुई घोड़ियों की हिनहिनाहट ही ख़ामोशी को चीरती रही।

चरवाहे एक जगह पर इकट्ठे होकर चीख़ने-चिल्लाने,

एक-दूसरे की लानत-मलामत करने और एक-दूसरे को डांटने-डपटने लगे :

"यह हुआ क्या था? कौन सब से पहले चिल्लाया था? वह कम्बख्त शैतान कहा से आ धमका था? किसने उसे सब से पहले अपनी आखों से देखा था?"

मगर किसी ने भी न तो कुछ देखा था और न ही कोई कुछ जानता था। मगर रात के समय चीखा न जाये, यह भी कैसे हो सकता है? अंधेरे में एक की पुकार दूसरे के लिए नज़र का काम देती है...

चीखने-चिल्लानेवालों ने जब ध्यान से देखा-भाला, तो पाया कि बडा चरवाहा गायब है।

ये लोग अब घाटी में लौटे, इधर-उधर बिखर गये और एक-दूसरे को धीरे-धीरे आवाज देते हुए जामान्ताय को पुकारने लगे।

चुस्त कोकाई ने चरागाह की चट्टानी किनारोंवाली ढाल के नुकीले पत्थरों पर उसे जा ढूंढा। जामान्ताय धीरे-धीरे कराह रहा था, उस से ताजा रक्त की गन्ध आ रही थी, उसका लट्ठ पास ही पड़ा था लेकिन उसके घोड़े का कही अता-पता नही था।

"ए! .." कोकाई चिल्लाया। "इधर आकर देखो... किसी ने इसका सिर तोड़ डाला है... उसका तो सारा खून ही बह गया है!"

चरवाहे जामान्ताय को उठा ले चले।

"जिन्दा है! सांस आ-आ रही है... किसने ऐसा किया? किसने?"

बड़ा चरवाहा घाटी की ओर इशारा करता हुआ अस्पष्ट-सा कुछ बड़बड़ाता रहा।

इन्ही पत्थरों पर उसकी वाख़्तीगुल से मुठभेड़ हुई थी। घोड़े को भगाये आते हुए जामान्ताय ने ही गुस्से से पहले वार किया। उसकी चोट हल्की रही, निशाने पर नहीं बैठी। लट्ठ का बिचला हिस्सा कंधे पर लगा। मगर जवाबी चोट खूब करारी रही—घोड़ा और घुड़सवार ढाल से नीचे जा गिरे...

जामान्ताय अजनबी को पहचान नहीं पाया। मगर इस बात को ध्यान में रखते हुए कि चोर ने रात के समय कैसी होशियारी से काम किया, ढेर सारे रखवालों की आंखों में धूल झोंक गया यह जाहिर था कि उसे अपने काम में कमाल हासिल है, वह हेरीफेरी के काम में घुटा हुआ है। घोड़े का मूल्य आंका जाता है उसकी तेजी से, भेड़िये को जाना जाता है उसकी चुस्ती से...

वाख़्तीगुल दुलकी चाल से घोड़े को दौड़ाता हुआ इत्मीनान से घाटी को लांघ रहा था। शुरू में तो वह आहट लेता रहा, फिर शान्त हो गया और उसके घोड़े ने भी कनौतियां बदलना बन्द कर दिया। उसका पीछा नहीं किया जा रहा था। फिर भी वाख़्तीगुल ने चीड़ वृक्षों के बीच से कई चक्कर काटे। उसने नम भूमि पर घोड़े को चक्कर लगवाये और चिकने पत्थरों पर से आगे बढ़ा। वैसे भी बरसात के बाद उसके निशानों को पहचानना सम्भव नहीं था।

वाक़्तीगुल अपना शिकार लिए हुए बढ़ता चला गया। वह घोड़ी को बार-बार प्यार से देखता हुआ बहुत ख़ुश हो रहा था। बहुत ही पसन्द आई थी उसे वह।

घोड़ी की गर्दन पर हाथ फेरते हुए उसने उसके कटे हुए अयाल के नीचे छूकर देखा तो वहां चर्बी की मोटी तह पाई। क्या उसे बहुत बड़ी सफलता हाथ नहीं लगी थी? बहुत अर्से से वाक़्तीगुल कभी इतना ख़ुश नही हुआ था।

"बहुत खूब है...", उसने प्रशसा करते हुए धीरे से कहा। "बहुत बढ़िया जानवर है।.." इसलिए कि घोड़ी को कही नजर न लग जाये, उसने अपनी उंगलियो पर थूका।

पानी लगातार बरसता जा रहा था। भीगा-भीगा अंधेरा वाक़्तीगुल का मुह धो रहा था। वह मुस्कराता हुआ गीली मूछो पर ताव दे रहा था। वाक़्तीगुल को राह से भटक जाने का डर नही था। बेशक आकाश अंधेरे की चादर में लिपटा था, पर्वत भी काले-काले थे और उसके घोड़े की थूथनी के सामने काले ऊन के उलझे-उलझाये गोले जैसा अंधेरा छाया हुआ था, पर वाक़्तीगुल को इस अन्धेरे मे आकाश भी दिखाई दे रहा था, उसे पहाड़ और अपना रास्ता भी बहुत साफ नजर आ रहा था।

पौ फटने के बहुत पहले ही उसने गन्ध से यह अनुभव कर लिया कि वह सारीमसाक्त के जंगल के निकट पहुंच गया है। चढ़ाई की तुलना में उतराई हमेशा जल्दी से तय हो जाती है... मालिक की तरह उसका घोड़ा भी काम से

जी चुराना नहीं जानता था। मगर जब जंगल के छोर पर राल की तेज गन्ध नाक में घुसी, तो वाख़्तीगुल ने नाक-भौंह सिकोड़ी, मुंह फेर लिया और उसे उबकाई-सी आने लगी। उसने बचा-बचाया सूप पिया, घोड़े से उतरा, घोड़े की काठी उतारी, उसका तन पोंछा, उसकी पीठ, पहलू और छाती को सहलाया। घोड़ा भी ज़रा दम ले ले, उसका पसीना सूख जाये – इसे भी भूख सता रही होगी।

एक पुराने चीड़ वृक्ष के नीचे काठी पर बैठा हुआ बाख़्तीगुल सोच में डूब गया। उसके घोड़े ने अपनी थूथनी से धीरे से मालिक के कंधे को हिलाया। हां, सचमुच चलने का वक़्त हो गया था। उजाला होने तक दूर निकल जाना चाहिए। उसे अब देर नहीं करनी चाहिए, चोरी का माल ले उड़ना चाहिए।

बाख़्तीगुल ने फिर से घोड़े पर जीन कसा और उसके पिछले बन्द को ज़ोर से बांध दिया ताकि लगातार ढाल से नीचे उतरते समय जीन खिसक कर घोड़े की गर्दन पर न पहुंच जाये।

३

सुबह होने को थी, जब पानी बरसना बन्द हो गया, कुछ कुछ गर्मी हो गयी। बाख़्तीगुल को नींद ने धर दबाया। वह मूछों से छाती को छूता हुआ जीन पर बैठा-बैठा ही सो गया।

अपने ही खर्राटे की आवाज से वह चौंक कर जागा, डर से सिहरा और उसने फटी-फटी आंखों से इधर-उधर देखा। नींद में उसे लगा था मानो उसका गला घोंटा जा रहा है।

उजाला हो गया था। ओह, किसी की नजर न पड़ जाये उस पर...

बाख़्तीगुल चिचड़ियों की भांति सिमटे-सिमटाये और जाले के समान उलझे-उलझाये कंटीले झाड़-झंखाड़ के बीच लुकी-छिपी लम्बी राह पर बढ़ता चला गया।

अब बाख़्तीगुल दिन को भी कहीं न ठहरा, मंजिल की ओर बढ़ता ही चला गया। उसने न खुद चैन की सांस ली और न घोड़ों को ही दम लेने दिया।

"घर पहुंचना चाहिए, बच्चे इन्तज़ार में होंगे..." बाख़्तीगुल घोड़े के कान में बुदबुदाता रहा।

बाख़्तीगुल का झोपड़ा अनाथ की तरह दूसरों से अलग-थलग एक वीरान पहाड़ी घाटी में आश्रय लिया हुआ था। इस इलाके में से धूल भरे कारवां के रास्ते नहीं गुजरते थे, लेकिन यहां चुराये हुए घोड़ों का पूरा झुण्ड भी छिपाया जा सकता था। बाख़्तीगुल का यहीं जन्म हुआ था और यहीं उसने अपने मां-बाप की मिट्टी ठिकाने लगाई थी। यहां उसका अपना घर था।

घर के क़रीब पहुंचने पर वह घोड़े से उतरा, घोड़ी की अगाड़ी बांधी, अपनी टांगें सीधी करता, सूखे होंठों पर ज़बान फेरता और झूमता हुआ घर की ओर बढ़ गया।

बर्फ पड़ने में अभी कम से कम एक महीने की देर थी, इसलिए परिवार बाड़े के निकट खड़े फटे-पुराने और धुएं से काले हुए ख़ेमे में रहता था।

वाक़्तीगुल पासा और अपनी थकी-हारी मुस्कान को छिपाने के लिए काली मूछों को मरोड़ने लगा। उसे हातशा दिखाई दी। धूप के कारण बिल्कुल काली-सी हुई और चिथड़ों से जैसे-तैसे अपना तन ढके। वह चूल्हे के पास कामकाज में लगी थी, बच्चों के लिए चाय बना रही थी। वाक़्तीगुल के तीन बच्चे थे – सबसे बड़ा सेइत दस साल का था, उससे छोटा जुमबाई पांच साल का था और दो साल की सांवली तथा चंचल बातिमा अभी मा का दूध पीती थी। दो बेटे और एक बेटी... यही सारी दौलत थी वाक़्तीगुल और हातशा की।

बाप के आने पर बच्चो ने न तो कोई शोर-गुल किया, न किसी तरह की कोई हलचल ही हुई। फिर भी उसके आते ही धुएं से काले हुए खेमे में जैसे उजाला हो गया। सुन्दर-सुगढ़ हातशा पति को देखते ही बुत-सी बनी रह गयी, कुछ शुभ-अशुभ की प्रतीक्षा करती हुई। वाक़्तीगुल पुरुष की प्रतिष्ठा को बनाये हुए शान्त भाव से और चुपचाप घर के करीब आया, दहलीज़ के पास पडी टहनियों को लाघा, खेमे में प्रवेश किया और खंखार कर दरवाज़े के सामने गृह-स्वामी के मुख्य स्थान पर दीवार के पास जा बैठा। कठिन मंज़िल के बाद अपने झोपड़े मे यह स्थान कितना प्यारा होता है!

मगर मूछो को मरोड़ता हुआ बाख़्तीगुल बहुत देर तक चुप न रह सका। अपने को धीर-गम्भीर बनाये न रख पाकर उसने कनखियों से चूल्हे में दहकते लाल अंगारों को देखा और नाक सिकोडी।

"हा तो बीबी कैसे काम चल रहा है... कुछ थोड़ा-बहुत खाने को मिल सकेगा?.."

हातशा का मन हुआ कि भागकर अपने पति के चौड़े तथा मजबूत कधों से लिपट जाये। मगर उसकी हिम्मत न हुई। उसने दहलीज के पास खड़े रहकर ही आदर और नम्रता से पूछा.

"आपका सफ़र कैसा रहा?"

"जल्दी करो..." वह जवाब में बुदबुदाया। "मेरे पास वक़्त नही है!"

घर मे खाने को जो कुछ भी था, हातशा सब निकाल लाई। भेड की ख़ुश्क की हुई पारदर्शी अंतडी में वसन्त के दिनो से सम्भाल कर रखे हुए घी की भी उसने कंजूसी नही की। यह घी खाने-पीने की चीज़ें रखने के सन्दूक मे सबसे नीचे रखा हुआ था। उसने इसे पति के सामने रख दिया और उसके लिए गर्म-गर्म चाय डाली। जब-तब उसने पति की कोहनी, उसके कंधे से अपना तन छुआने की भी कोशिश की। बाख़्तीगुल गर्म चाय को लम्बी-लम्बी चुस्किया लेकर पी रहा था। हातशा बाग-बाग हुई जा रही थी बाख़्तीगुल से यह बात छिपी न रह सकी।

परिवार के लिए तो आज जैसे पर्व का दिन था।

की ग्राखें चमक रही थी, उनकी ख़ुशी तो जैसे बिखरी जा रही थी। जुमवाई ग्रौर बातिमा चुपके-चुपके एक-दूसरे को पैर मार रहे थे, शरारती ढंग से मुस्करा रहे थे। सेइत ने 'शी-शी' करते हुए उन्हें डाटा, मगर ख़ुद उसकी भी बाछें खिली जा रही थी।

बाक़्लीगुल का मन-मोर ख़ुशी से नाच रहा था। बहुत दिनों बाद आज पहली बार उसके मन का बोझ हल्का हुग्रा था। मगर उसके चेहरे से उसकी इस ख़ुशी को नहीं भांपा जा सकता था। बेकार बोलते जाना उसे पसन्द नहीं था। वह बैठा हुग्रा चाय पीता ग्रौर मूछों पर ताव देता रहा।

उसने एक के बाद एक चाय के तीन प्याले खत्म किये, मूछें पोंछी, उठा ग्रौर ख़ेमे से बाहर चल दिया। दहलीज़ के पास जाकर उसने मुड़े बिना पत्नी से ये शब्द ऐसे कहे मानो कोई बहुत ही तुच्छ बात कह रहा हो:

"बोरी लेकर मेरे पीछे-पीछे ग्राग्रो।"

हातशा तो बहुत बेसब्री से यही शब्द सुनने का इन्तज़ार कर रही थी। ख़ेमे में झटपट सब कुछ ठीक करके उसने बड़े बेटे सेइत को हिदायत करते हुए कहा:

"घर से बाहर कहीं नहीं जाना। ग्राग का ख़्याल रखना। ग्रगर कोई ग्राकर कुछ पूछे तो कहना कि मां उपले लेने गई है, ग्रभी ग्रा जायेगी।"

ख़ेमे में सिर्फ़ बच्चे ही रह गये। उन्होंने हो-हुल्लड़ मचाना शुरू कर दिया। फटे हुए नमदे के पीछे से कभी चीख़-

चिल्लाहट, कभी रोना-धोना तथा कभी ठहाके सुनाई देने लगे। जुमबाई को तो लडे-भिड़े बिना चैन नही पड़ता था। वह भाई-बहन को खिझाता-चिढाता और उनके हाथों से सूखी मलाई के मज़ेदार टुकडे छीन लेता था।

हातशा को निकट ही तुकी-छिपी जगह में, हिमनदी से बनी हुई छोटी-सी सूखी झील के तल में अपना पति मिल गया। तल पथरीला था और उसकी दरारों में पिछले वर्ष की बर्फ जमी हुई थी। झील के खड़े तट जलवायु से जीर्ण-शीर्ण, सीगो की भाति नुकीले और सफेद-गुलाबी पत्थरों से घिरे हुए थे। इन पर उगे हुए घास के लम्बे गुच्छे बकरों की दाढ़ी जैसे लगते थे। जगह ऐसी थी कि आसानी से नजर न आये और यहा आने का मतलब था घोड़े की टांगें और अपनी गर्दन तोड़ना।

वाख़्तीगुल घोड़ी के फैले हुए धड़ के क़रीब उकड़ूं बैठा था। उसने उसकी खाल उधेड़नी शुरू कर दी थी। पथरीले गढ़े में अन्धेरा-सा था, ठंडक थी और कच्चे मांस की तेज गन्ध आ रही थी। हातशा झटपट काम में जुट गई और फ़ुर्ती से पति का हाथ बंटाने लगी।

वाख़्तीगुल ने जब घोड़ी की अन्तड़िया बाहर निकाली, तो हातशा को काफी काम करना पड़ा। उन्हें छांटना औरतो का काम है और जितना सम्भव हुआ हातशा ने इसे ढंग से करने की कोशिश की।

साथ ही साथ उसने चपटे पत्थर पर फुर्ती से आग भी जला दी। वह यह नहीं भूली थी कि पति ने एक

मांस चखकर नहीं देखा। उसने बैंगनी रंग का चर्बीवाला गुर्दा और बड़े चाव से चुने हुए मांस के दो-तीन और टुकड़े दहकते अंगारो के अंदर रख दिये —"खुश होकर खाये कुनबे को खिलानेवाला मेरा मालिक," वह सोच रही थी।

बाख़्तीगुल बेचैनी से आग की ओर देख रहा था। धुआं देखकर कहीं अनचाहे मेहमान यहां न आ धमके... पर वह चुप्पी लगा गया। भूख समझ-बूझ पर हावी हो जाती है, जबान में ताला लगा देती है। भगवान इस आग की रक्षा करना, खा लेने देना यह मांस! ..

ये दोनो शाम होने तक लगातार काम में जुटे रहे। उन्होने धड़ के टुकड़े कर खाल और मांस को भरोसे की जगह पर छिपा दिया और ऊपर पत्थर रख दिये। केवल हफ़्ते भर के लिए कुछ मांस और अन्तड़ियां अलग रखी गई थीं। यह हिस्सा बड़ा नही था, मगर चरवाहे के परिवार के लिए वह पर्व के दिन के भोजन की तरह बहुत काफ़ी था। झुटपुटा होने पर वे ख़ेमे में लौट आये।

चूल्हे के पास दौड़-धूप करती हातशा को देखता हुआ बाख़्तीगुल मूंछों में छिपे-छिपे मुस्करा रहा था। हातशा ने पानी से भरी पतीली आग पर रखी, उसमें घोड़ी के स्तन का नर्म-सा मांस और हृदय और अयाल के नीचेवाली बहुत-सी चर्बी डाल दी। साथ ही उसने अंगारों पर कलेजी भूनकर बच्चों में बांट दी।

रात ठंडी थी, मगर ख़ेमे में गर्मी थी, घरेलू आराम था। सेइत टहनियां ला लाकर मां के पास जमा करता जाता

था। लडका बेशक बहुत लगन से अपना काम कर रहा था, फिर भी वह बाख्तीगुल को धोखा नही दे पाया। उसने बेटे को अपने पास बुलाया, मगर वह तो जैसे मन मारकर उसके पास आया। सेइत अचानक उदास हो गया था।

उस के साथ पहले भी कई बार ऐसा हो चुका था। अजीब था यह लड़का, उम्र के लिहाज़ से कही अधिक चिन्तनशील, चीज़ों को परखने-समझनेवाला और कही अधिक समझदार। घर में अगर उदासी का वातावरण होता, बोझिल ख़ामोशी छाई होती, बड़ों मे झगड़ा हो गया होता, तो वह अचानक ही नाचने और मेमने की तरह उछलने-कूदने लगता। पर कभी जब घर मे हंसी-ख़ुशी होती तो वह घुटनों के बीच मुंह छिपाये बैठा रहता। कोई उठा तो ले उसे ज़मीन से! जब उसे इस तरह का दौरा पड़ता तो बेशक उसके सामने सोना फेंक दिया जाता, वह उसकी ओर भी आंख उठाकर न देखता! बुरी तरह पिटे हुए पिल्ले या पागल की तरह देखता रहता दर्द भरी और उदास-उदास नज़र से। वह तो मानो अंधा और बहरा हो जाता, मां-बाप तक के पुकारने पर घूमकर भी न देखता।

इस समय भी वह सोच में डूब गया था, किसी वयस्क की भांति लुटी-लुटी-सी थी उसकी नज़र, बिना मूछोंवाले होंठों पर दर्दभरी और अपराधी की सी मुस्कान...

बाख़्तीगुल ने उसे अपने पास बिठा लिया।

जुमबाई और बातिमा भी झटपट बाप की ओर लपके और उस के साथ ऐसे आ चिपके, जैसे पिल्ले चूचियों से।

वे आग से दूर बैठे थे इसलिए हातशा ने खाल के कोट से इन चारों को ढक दिया।

बच्चे शान्त हो गये। उनकी निकटता से चैन की मधुर और बहुत प्रिय अनुभूति हो रही थी। पतीली में मांस उबल रहा था, ख़ेमे में प्यारी-प्यारी गंध बसी थी और हातशा हंसी-मज़ाक़ करती हुई फुर्ती से इधर-उधर आ-जा रही थी। वाख़्तीगुल को मानो रज़ाई के पार से उसकी आवाज़ सुनाई दे रही थी। उसे पता भी न लगा कि कब उसकी आंख लग गई।

हातशा ने तंग मुंहवाली गागर में गर्म पानी डाला और पति को हाथ धो लेने के लिए आवाज़ दी। वाख़्तीगुल ने बड़ी मुश्किल से पलकें खोलीं। उसकी आखें धुंधली-धुंधली थीं और धुएंदार लपटों के प्रकाश में उसे ऐसे प्रतीत हुआ मानो उनमें ख़ून तैर रहा हो। नींद में उसकी पीठ अकड़ गई थी और पैर सुन्न हो गये थे। उसने जम्हाई ली, सिहरा और ऊंघते-ऊंघते ही अपने साथ चिपके हुए बच्चों को परे हटा दिया।

"ओह, मैं तो थककर बिल्कुल चूर हो गया हूं.." गागर की ओर चुल्लू बढ़ाये हुए वह बड़बड़ाया।

"अभी, मेरे प्यारे, अभी..." हातशा ने बहुत स्नेह, बड़े प्यार से कहा।

पतीली को आग पर से उतारकर उसने तश्तरी में मांस डालने के लिए झटपट लकड़ी का कलछुल उठा लिया। वाख़्तीगुल ने ज़मीन पर से अपनी पेटी उठाई, मियान में

से काले दस्तेवाली लम्बी, पतली छुरी निकाली और अंगूठा फेरकर उसकी धार की जाच की। छुरी बहुत बढ़िया थी, मांस को मक्खन की तरह काटती थी। वाख़्तीगुल ने गर्म पानी से छुरी को धोया।

"अभी, अभी प्यारे..." हातशा ने दोहराया। इसी क्षण बाहर से कुत्तो की भूक सुनाई दी।

बूढ़ी कुतिया और उसके दो पिल्ले एकसाथ भौंक रहे थे। उनकी भूक से बाख़्तीगुल समझ गया कि वे बाड़े की तरफ दौड़े आ रहे हैं।

हातशा को तो जैसे काठ मार गया, कलछुल पतीली के ऊपर ही रह गया और वह डरी-सहमी नजर से पति की ओर ताकने लगी।

धरती मे से मानो अनेक घोड़ो की टापे फट पड़ीं और कुत्तों की भूक उन्ही मे डूबकर रह गई। बाख़्तीगुल ने पत्थरों पर रगड खाते हुए चरवाहो के भालों की जानी-पहचानी आवाज को साफ तौर पर पहचान लिया। ये भाले स्तेपीवालों के आजमाये हुए हथियार थे।

"मांस को ढक दो... मुसीबत आई कि आई!" उसने दबी-घुटी आवाज मे कहा।

हातशा हवा मे उड़ते हुए पंख की भांति इधर-उधर डोलने लगी। उसे पतीली का ढक्कन ही किसी तरह नही मिल रहा था। घोड़ो की टापो की आवाज निकट आ रही थी। पति खीझता हुआ गुस्से से उसकी ओर देख रहा हातशा के तो हाथ-पैर ही फूल गये। कलछुल को ।हल

डुलाते और पसीने से तर-ब-तर होते हुए वह मानो बेमानी फुसफुसाहट में दोहराती रही :

"अभी, अभी..."

वाकुलीगुल ने दात पीसकर गाली दी। हातशा ने हड़बड़ी मे जमीन पर से चटाई उठाई और उसी से पतीली को ढक दिया। उसने कलछुल को पानी से भरी बालटी में फेंककर ऐसे हाथ पीछे खीचा मानो वह जल गया हो। चटाई के नीचे से भाप बाहर निकल रही थी, मगर हातशा का इसकी ओर ध्यान नही गया। उसकी टागों ने बिल्कुल जवाब दे दिया था और वह जहा की तहा जमीन पर धम से बैठ गई।

पूछे-ताछे और सलाम-दुआ किये बिना ही अजनबी खेमे में घुसते आ रहे थे। उनके चेहरो से साफ जाहिर था कि जल्द ही कोई बिजली गिरनेवाली है। ये कोजीवाकी थे, गुंडे, हट्टे-कट्टे, अधेड़ उम्र के, जोर-जबरदस्ती और रातो को लूट-मार करनेवाले। इनकी चाल-ढाल में बेहयाई थी, नजर मे नफरत। पहली ही नजर में पता चल जाता था कि ये घूंसो और डडों से बात करते है, उन्हे यह बर्दाश्त नही कि कोई उनकी बात काटने की हिम्मत करे।

बूटों पर कोड़ा मारता हुआ मोटी तोंद और मोटे चुतड़ोंवाला साल्मेन बड़ी अकड़, बड़े रोब के साथ खेमे मे आया। उसकी चमड़े की चौड़ी पेटी चांदी मे मढ़ी हुई थी। उसके साथ-साथ ही कई अन्य हट्टे-कट्टे, खा-पीकर खूब मोटे-ताजे हुए गुंडे भीतर आये। वे वाकुलीगुल के सामने तनकर खड़े हो गये।

खेमे में जमघट हो गया, मगर पीछे से अन्य लोग रेल-पेल करते हुए वाई के निकट पहुंचने की कोशिश कर रहे थे। सबसे बाद मे लाल दाढ़ी और पैनी नजरवाला एक दुबला-पतला आदमी फुर्ती से भीड़ को चीरकर आगे आया। उसने तो बाक़्तीगुल की ओर देखा तक नही, जोर से नाक बजाई और मानो डुबकी मार कर डर से बावरी-सी हुई हातशा का कधा छूते हुए उसके पास अलाव के क़रीब जा लेटा। वह उससे दूर हट गई, मगर उसने उसे आंख मारी और बेहयाई से मुस्कराया। मसखरे और लफंगे तो हर जगह ही तरंग में रहते है।

सुर्ख चेहरेवाले एक हट्टे-कट्टे जवान ने भयानक रूप से आखें तरेरी, नाक फड़फड़ायी और मुह को टेढाकर अपनी कटी हुई मूछों पर जबान फेरी और किसी तरह की भूमिका वाधे विना ही कहा:

"ए, कल रात तुम चरागाह में चरते हुए हमारे घोड़ो के झुण्ड मे से एक घोड़ी चुरा लाये और तुमने रखवाले जामान्ताय का सिर भी तोड़ डाला। जरा-सी समझ रखनेवाला भी यही कहेगा कि तुम्हारे सिवा यह और किसी की करतूत नही हो सकती। फिर सुबह को पहाड़ों में दो घोड़ों के साथ एक सवार को देखा गया। दिन ढलते समय किसी ने तुम्हारे खेमे के क़रीब से धुआं निकलता देखा। मतलब यह कि मामला बिल्कुल साफ़ है। लुटे हुए जवान तो अपने बाप को भी क्षमा नही करते। और हमसे तो तुम्हें इसकी उम्मीद ही नही करनी चाहिए... अब बोलो तो!'

गुंडों के इस गिरोह को देखकर बाह्तीगुल डरा-घबराया नहीं, यद्यपि वह अच्छी तरह समझता था कि इन संगदिल और बेवकूफ लोगों से किसी तरह के रहम-तरस की उम्मीद नहीं की जा सकती। उसने अपने दिल को मजबूत किया और मानो कसम खाते हुए मन ही मन यह दोहराता रहा— "मेरा सच, तुम्हारा झूठ। मैं चाहे कुछ भी क्यों न करूं सालमेन द्वारा की गई ज्यादती के मुकाबले में सब कुछ कम ही रहेगा!" इसलिए जवान को उत्तर न देकर उसने बाई से पूछा:

"लगता है कि तुम मुझ पर चोरी का इलजाम लगाना चाहते हो? क्या चोर था बाह्तीगुल?"

सालमेन ने हांफते हुए उत्तर दिया:

"अपने को दूध-धोया साबित करने की कोशिश न करो!"

बाह्तीगुल के चेहरे पर पहले की तरह ही दृढ़ता की छाप अंकित रही।

"मेरी क्या हस्ती है तुम्हारे सामने! तुम तो मेरे हेडमैन हो, मैं भला तुम्हारी क्या बराबरी कर सकता हूं!"

सालमेन तो मानो गुस्से में आगबबूला हो गया, गुस्से से उसकी नाक नीली हो गई।

"ओह, तुम... तुम... चोर साले हो ..."

"जरा जबान बंद करो! किसने देखा मुझे चोरी करते? कौन गवाह है इस बात का?"

"घबराओ नहीं, गवाह भी आ जायेगा ..."

"कहां है वह? मेरे सामने हाजिर करके दो उसे।"

"बहुत चालाक बनते हो!" बाई ने उसकी बात काटते हुए कहा। "घोड़ी चुरा लाये, झुण्ड में खलबली मचा आये... एक ही रात मे इतना नुकसान! यह करतूत तुमने की, जिसे मैंने अपने हाथो से पाल-पोसकर बड़ा किया!"

"वह तो जाहिर है कि तुमने ही पाल-पोसकर बड़ा किया है मुझे। इसी लिए मेरे साथ मनमानी करते हो! तुम इसी के आदी हो! कहो, तो क्यों मेरे पीछे पजे झाड़कर पड़े हो?"

"तुम्ही ने मेरे साथ ज्यादती की है और उल्टे मुझे ही अपराधी ठहराते हो?"

"जैसे कि तुम किसी चीज के लिए अपराधी नही हो!"

बाई बहकी-बहकी नजर से इस चरवाहे को देखता रहा।

"क्या बिगाड़ा है मैंने तुम्हारा?"

"यह पूछो कि क्या नहीं बिगाड़ा। तुमने मेरी आत्मा निकाल ली। सगे भाई की जान ले ली। पीट-पीट कर उसे मार डाला..."

"तो यह बात है! मतलब यह कि तुम्हें मुझसे ख़ून का बदला लेना है?"

बाक़्तीगुल ने सीने पर हाथ रख लिये।

"ख़ुदा ने ख़ुद ही तुम्हारी जबान पर ये लफ़्ज़ रख दिये... तुमने ख़ुद ही ये शब्द कह दिये।"

"तुम्हारा दिमाग़ चल निकला है! पेच ढीले हो गये हैं क्या?"

बाख़्तीगुल ने दुखी होते हुए सिर हिलाया।

"मरनेवाले को तुमने चैन से मरने भी नहीं दिया... न तो कोई अच्छे शब्द कहे, न कोई मदद की! आठ बरस तक वह तड़पता रहा, तुमने एक निकम्मी भेड़ तक न भेजी। मरने से पहले दिलासा पाने की उसकी आशा भी बेकार रही..."

बाई ने अपनी फूली-फूली आंखों को सिकोड़ा, जबान से च-च की।

"ओह, तो बात को यह रुख दे रहे हो... अच्छा तो जोड़ लो हिसाब! बहुत देना है क्या मुझे तुम्हें? शायद मेरी कुल दौलत में से आधी तुम्हारी है? झपट लो, देर न करो! और क्या कुछ लेना है तुम्हें कोजीबाकों से, साल्मेन से?"

भीड़ में ख़ुशामद और धमकी भरी हंसी सुनाई दी। मगर बाख़्तीगुल के चेहरे पर जरा भी घबराहट नहीं आई। मैं अकेला हूं तो क्या! सचाई मेरे साथ है!

"हिसाब जोड़ने को कहते हो, तो ऐसा ही सही। बीस जाड़ों तक मैंने बर्फ ओढ़ी और बर्फ बिछाई, गर्मियों में रात रात भर पलक भी न झपकी। बीस वसन्तों तक ख़ुशी नहीं देखी, बीस पतझड़ों तक शिकायत नहीं की। न दिन देखा, न रात, तुम्हारे घोड़ों को चराता रहा। बेचारा सेक्तीगुल तुम्हारी भेड़ों के साथ इसी तरह जान खपाता रहा। बारह बरस हुए हानसा को मेरी बीवी बने। तभी से वह तुम्हारी भी दासी रही, तुम्हारी मां की सेवा करती

रही। तपेदिक मे तुम्हारी मां घुलती जाती थी और साथ ही मुरझाती जाती थी मेरी बीवी की जवानी, उसकी खूब-सूरती। इन सब का क्या फल मिला हमें? बस इतना ही न, कि जब तक भूख से दम न निकल जाये, हम इसी चक्की मे पिसते रहें?"

"समझ गया, समझ गया... बड़े कमीने, बहुत घटिया हो तुम!" साल्मेन चीख़ उठा और सभी ओर उसकी लारें बिखर गईं। "तुम्हारी रग-रग को पहचानता हूं मैं। तुम्हारी यह हिम्मत! खुद चोर हो और मुझे शर्मिन्दा कर रहे हो। अगर तुम्हारी ज़बान न खीच ली तो कहना... घोड़ी कहा है?"

"घोड़ी अदालत में जाकर मागना।"

"मागना? ओह, पाजी, अबे उल्लू! ओ भिखमंगे... तुम हो किस खेत की मूली?"

"तुम्हे अपनी ताकत का घमंड है, मुझे अपनी सचाई का। हो जाय हमारा इन्साफ़!"

"घबराओ नही, हो जायेगा इन्साफ़! बहुत बढ़-चढ़कर बाते कर रहे हो, बड़े बकवासी कहीं के! तुम कोजीबाकों से पंजा लड़ाना चाहते हो? अदालत मे- जाना चाहते हो, इन्साफ़ की मांग करते हो? अच्छी बात है... अदालत भी हो जायेगी! तुम्हारी जबान तो कैंची की तरह चलती ही है, इसलिये जाओ अदालत में! वहां तुम्हे, तुम्हारी करतूत का फल मिल जायेगा! घोड़ी फौरन वापिस करो! अदालत में देखा जायेगा कि किस को क्या मिलता है...

आख़िरी बार पूछ रहा हूं—घोड़ी कहां है? बोलो!" इतना कहकर गुस्से से आग-बबूला होते हुए साल्मेन ने अपना कोड़ा लहराया।

बाख़्तीगुल तो हिला-डुला भी नही मानो इस से उसका कोई सरोकार ही न हो। उसने कनखियों से देखा कि बाई के गुडे अपने लट्ठ साधे हुए उसकी ओर सरकते आ रहे हैं। वे तो सिर्फ़ इशारे के इन्तज़ार में थे।

बाख़्तीगुल ने गहरी सांस लेकर कहा:

"तुम्हारी घोड़ी का तो यहां नाम-निशान भी नही..."

"कहा गई?"

"एक दोस्त को दे दी कि वह कही दूर ले जाये। दोस्त एतबार के लायक है, धोखा नही देगा..."

"झूठ बोलते हो, लानत है तुम पर!"

"झूठ बोलता हूं तो मत पूछो! जवाब नहीं दूगा।"

तब तन्दूर के पास लेटा हुआ फुर्तीला लाल दाढ़ीवाला कुहनियों के बल ऊंचा उठा और अपनी खरखरी आवाज़ मे बेवकूफों की तरह बोला:

"ए गूंगे... इनकार करने में क्या तुक है? कौन बेमतलब घोड़ी भगाकर लायेगा? खूब तमाशा है यह भी! मेरी यही मौत हो जाये अगर मै झूठ बोलूं, इसी पतीली में, जिस पर मालकिन की नजर टिकी हुई है, वह है, जिसे मेरी नाक अनुभव कर रही है। नाक मे गुदगुदी-सी हो रही है... यह मांस की गंध है, जवानो! कसम खाता हूं, यह वही रंगीली घोड़ी है ... कहां से आई यह तुम्हारे पास, मालिक? बताओ तो, हम सुनना चाहते हैं।"

वाक़्तीगुल ख़ामोश रहा, हातशा की नजर धरती पर टिकी हुई थी। लाल दाढ़ीवाले ने उछलकर भाप के कारण अन्दर की ओर से गीली हुई चटाई को पतीली पर से झटके के साथ उतारा।

"बिल्कुल ऐसा ही है! ढक्कन का कहीं अता-पता नहीं, अनजाने ही ख़ज़ाना हाथ लग गया! .. तो प्यारे मेहमानो, तुम्हारे ही लिये तो है। इन्तजार किस बात का है? जवानो, धो लो हाथ। हातशा फुर्ती से तश्तरी बढ़ा दो!"

सालमेन के गिरोह के लोग एक-दूसरे को कोहनियाते हुए बाई के निकट हो गये।

शर्म की कड़वाहट से बेजबान हुई हातशा ने बड़ी तश्तरी बढ़ा दी।

लाल दाढ़ीवाले ने ख़ुद मांस निकाला और टुकड़ों में काटकर तश्तरी में डाला। सालमेन और कोई दस हट्टे-कट्टे जवान आस्तीनें चढ़ाकर मास के चर्बीवाले, नर्म-नर्म और भापवाले टुकड़ों पर टूट पड़े।

उन्होने वाक़्तीगुल को तो झूठ-मूठ भी शामिल होने को नहीं कहा। घर का मालिक एक तरफ खड़ा हुआ भूख की राल निगलता रहा। प्यारे मेहमान अपनी पीठों से उसके सामने दीवार बनाकर खड़े हो गये।

हातशा नफ़रत और हिकारत से जमीन ताक रही थी। उसने अपने जीवन में बहुत-सा कमीनापन देखा था, मगर इसकी तो मिसाल ही नहीं थी!

जवान लोग और बाई ख़ूब मुंह भरकर, गाल फुलाये

ग्रौर चप-चप की ग्रावाज करते हुए मांस हड़पते रहे... कम्बख़्तों का पेट भी नही फटा!

तश्तरी ख़ाली हो जाने पर साल्मेन ने ज़ोर की डकार ली ग्रौर वाख़्तीगुल से बोला:

"ग्रब हमें ग्रहाते में ले चलो। देखेंगे कि वहा क्या कुछ छिपा है। मेरा कुल-नाश हो जाये, ग्रगर मैं तुम्हारे पास घोड़ी की पूछ भी रह जाने दूं। तुम मेरी ग्रांखो मे धूल नही झोक पाग्रोगे, यह तिकड़म नही चलेगी... सब कुछ ले जाऊंगा, कुछ भी नही छोड़ूंगा। हां, चलो तो, जल्दी से, जब तक जिंदा हो!

भूख के मारे वाख़्तीगुल की ग्रन्तड़िया ऐंठी जा रही थी। "चाहते हो तो ख़ुद जाकर ढूंढ लो, मिल जाये तो ले जाग्रो," ग्रपमान के कारण तथा ग्रौर ग्रधिक बुराई की ग्राशा करते हुए उसने दात भीचकर कहा। "ख़ूनी ग्रांखें ग्रौर लम्बी-चौड़ी वाते करके तुम मुझे नही डरा पाग्रोगे..."

साल्मेन ने झपट कर वाख़्तीगुल पर दो बार कोडा बरसाया... वाख़्तीगुल ने तो ग्रपने बचाव के लिए कुछ भी नही किया। वह टकटकी बांधकर बाई को देखता रहा ग्रौर उनींदेपन के कारण सूजी हुई उसकी ग्रांखों में ग्रासू झलक उठे। बाई ग्रापे से बाहर होकर बहुत गन्दी गालिया बकने लगा।

वाख़्तीगुल को सबसे ग्रधिक डर इसी बात का था: पत्नी ग्रौर बच्चों के सामने ग्रपनी ऐसी हेठी हो जाने का।

हाथ ऊपर उठाकर हातशा जोर से चिल्ला उठी:

"ख़ुदा तुझे ग़ारत करे!"

संक्षिप्त चीख़ के साथ सेइत चिल्ला उठा:

"कुत्ते का पिल्ला!" और वह साल्मेन की छाती पर झपटा।

बाई ने लड़के को एक ओर को धक्का दे दिया। तब बाख़्तीगुल अपने को काबू में न रख सका और उसने बाई का गला पकड लिया।

बड़ा भयानक लग रहा था इस समय बाख़्तीगुल, पांच लोगों से भी ज्यादा ताकत आ गई थी उसमे। जवान अपने मालिक साल्मेन को फ़ौरन ही नही छुड़ा पाये, बाई के होश जल्द ही ठिकाने नही आये। जैसे-तैसे सांस लेता हुआ और गुस्से से टूटती आवाज में बाई फिर चिल्ला उठा:

"जरूर जेल की हवा खाओगे तुम! अरे कमीने... तुम्हें सड़ाऊंगा, जमीन मे गाडूंगा, साइबेरिया मे भिजवाऊंगा! अगर ऐसा न करूं तो मेरा नाम बदल देना..."

मगर बाख़्तीगुल अब न तो गालिया ही सुन रहा था और न धमकियां ही। उसे तो बुरी तरह पीटा जा रहा था। उसकी आखो के सामने लपटो के लहरिये-से उभरते, लहराते और घुल-मिलकर एक हो जाते। फिर वे भी बुझ गये। वह मानो धम से किसी तंग और अंधेरे कुएं में जा गिरा, कुएं की दीवारों से उसका सिर, पीठ और पेट टकराता रहा और वह किसी तरह भी उसके तल तक नही पहुंच पाया।

जबड़े के भयानक दर्द के कारण घड़ी भर को उसे होश आया। उसके मसूढ़ों को तो कोई मानो बर्मे से टुकड़े-टुकड़े किये दे रहा था। इसके बाद फिर से अंधेरा छा गया और आख़िर वह कड़ाही की तरह दहकते कुएं के तल में जा गिरा।

इसके बाद वाख़्तीगुल को किसी चीज का होश नहीं रहा।

४

वाख़्तीगुल काफ़ी देर बाद होश में आया और रक्तिम धुंधलके में से उसने बड़ी मुश्किल से हातशा को पहचाना। एक ही रात में उसका चेहरा बुरी तरह उतर गया था, वह बुढ़ा गई थी। सिसकियों से उसका गला रुंधा जाता था, उसकी आवाज खरखरी और बैठी-बैठी थी। वाख़्तीगुल अपनी बीवी की आवाज नहीं पहचान पाया।

ख़ेमे का प्रवेश-पट फाड़ दिया गया था और एक चौड़े सूराख़ में से हल्की और उदास-उदास रोशनी छन रही थी। ज़ोर से बरसते पानी की धारें चमक रही थीं और दहलीज़ पर घोड़ों के अयालों से मिलता-जुलता सफ़ेद फेन हिल-डुल रहा था।

वाख़्तीगुल कराह उठा। काश कि उसे यह रोशनी न देखनी पड़ती–यह दुर्भाग्य की रोशनी।

चूल्हा ठंडा हो चुका था और खाल के भारी कोट के नीचे वाख़्तीगुल ठंड से ठिठुर रहा था। उसके रोम-रोम में

पीड़ा हो रही थी और उसके जबड़े को तो मानो सड़ंसी से पकड़ कर खींचा जा रहा था। पति की पीड़ा को अनुभव करती और धीरे-धीरे सिसकती हुई हातशा उसके चेहरे पर जमा हुआ खून पोंछ रही थी। उसके चेहरे में तो इन्सानी चेहरेवाली कोई बात ही बाक़ी नहीं रह गई थी। वह तो बैंगनी रंग का टेढ़ा-मेढ़ा पिंड-सा बनकर रह गया था। आंखें ऐसे सूजी हुई थीं कि बयान से बाहर, गाल पर बड़ा-सा चीर था और उससे अभी तक खून बह रहा था। कोट के कमाये हुए चमड़े पर जमती हुई रक्त की ये बूंदें चमकते हुए काले मनकों के समान लग रही थीं।

बाख़्तीगुल ने कराहते हुए बड़ी मुश्किल से सिर घुमाया। उसकी आंखें किसी को खोज रही थीं।

"वे यहां नहीं हैं... चले गये सब शैतान..." हातशा ने रुंधे कण्ठ से कहा।

"सेइत..." बाख़्तीगुल ने उच्छ्वास छोड़ते हुए कहा। "वह यहीं है, शाबाश है उसे!"

पिता की पिटाई करने के बाद गुंडे बेटे पर झपटे। ख़ुद साल्मेन ने लड़के से यह उगलवाने की कोशिश की कि मांस कहां है। उसे मार डालने की धमकी दी। मगर सेइत ने तो ज़बान ही नहीं खोली। बाई गुस्से से लाल-पीला होता रहा और लड़का पगले की तरह हंसता रहा।

आंसू पीते हुए हातशा ने बताया—लाल दाढ़ीवाले ने मशाल जलाई और कुत्ते की भांति मांस की खोज करने लगा। उसी ने मांस खोजा। हफ़्ते भर के लिए जो थोड़ा-

सा मास छानी की कड़ियों के साथ टांगा हुआ था और जो पत्थर के नीचे गुप्त जगह पर छिपाया गया था, उसने सभी खोज लिया। रखवालों ने खाल के रंग से घोड़ी को पहचान लिया। साल्मेन ने सारा मास और इसके अलावा हमारा घोड़ा और गाय भी ले चलने का हुक्म दिया। घोड़ा इसलिए कि बाई के घोड़ों के झुण्ड में कमी न हो, गाय अपमान का बदला लेने की खातिर और मांस इसलिए कि वह चोरी का था और चोर के पास नही छोड़ा जा सकता था।

जाने से पहले लाल दाढ़ीवाला और दो अन्य जवान मशाल लिये हुए बाख़्तीगुल के पास आये। वे एक-दूसरे की नजरों मे झाकते और कान लगाकर कुछ सुनते रहे।

साल्मेन आया तो लाल दाढ़ीवाले ने उसे तसल्ली देते हुए कहा:

"ज़िन्दा है..."

"इस कम्बख़्त की किस्मत मे खे़मे में नही, जेल में सड़सेड़ कर मरना लिखा है। मेरा भाई काजी होगा... तुम सब होगे मेरे गवाह... शिकायत दर्ज करेंगे, मुहर लगायेंगे... इस चोर को निर्वासित किया जायेगा, इसके पैरो मे बेड़ियां डालकर इसे साइबेरिया भेज दिया जायेगा। याद रखना मेरे ये शब्द।"

इतना कहकर वे चलते बने।

बाख़्तीगुल ने बच्चों की ओर देखा। इन भोले-भालों को फिर से फाके करने होगें। अहाते की बूढ़ी कुतिया के पिल्लों की तरह भूखों मरना होगा।

"क्या कुछ भी नहीं बचा बच्चों के लिए?" बाख़्तीगुल ने पूछा।

"कुछ भी नहीं.. ज़रा-सा टुकड़ा भी नहीं," हातशा ने सिसकते हुए कहा। "सभी कुछ समेट ले गये। इतना ही नहीं, शैतान के बच्चे खेमे की भी बुरी हालत कर गये... ढांचे तक तोड़-फोड़ गये... उसी सूअर ने ऐसा करने का हुक्म दिया था। ख़ुदा करे कि उसकी हड्डियों को कुत्ते नोच-नोच खायें! .."

बाख़्तीगुल ने दांत किटकिटाये और फिर से बेहोश हो गया। आधे दिन तक वह बेहोशी में ज़ोर से बड़बड़ाता, ख़ुदा को कोसता और अज्ञात क़ाज़ियों को भला-बुरा कहते हुए यह पूछता रहा:

"ए बताओ तो... अब कहो तो... किसने किसकी चोरी की है?"

बाख़्तीगुल कई दिनों तक हिले-डुले बिना पड़ा रहा, सोचता और माथापच्ची करता रहा—अब क्या किया जाये?

मैं अकेला हूं और किसी से कोई मदद मिलने की आशा नहीं। कोज़ीबाकों के सामने मुझ अकेले की क्या दाल गलेगी? उनके गांव में क्या न्याय की आशा की जा सकती है? वे तो सीधे मुंह बात भी नहीं करेंगे। बड़े ही [illegible] हैं ये ज़ालिम! दूसरे तो इतने डरे-सहमे हैं कि [illegible] खोलने की हिम्मत नहीं करते! मुसीबत में [illegible] सहारा लेता है? रिश्तेदारों का। मगर [illegible]

बीसेक ही खेमे है गरीब सार वंश के। वे भी जहां-तहां बिखरे हुए हैं, उन्हें इकट्ठे करना सम्भव नही। वे धनी वंशों के साथ जहां-तहां ख़ानाबदोशी करते है, उनकी टहल-सेवा में लगे रहते हैं और ग़रीबी तथा दुख-मुसीबतों से उलझा करते है। किससे वे अपनी बात कह सकते हैं? कोई कान नही देगा उनकी बातों पर। उनमे से एक भी तो ऐसा नही जिसके पास चप्पा भर भी अपनी जमीन हो!

फिर भी सार वंश के लोगो ने जिस स्थिति के सामने घुटने टेक दिये थे, बाख़्तीगुल उसके सामने झुकने को तैयार नही था। शायद वह दूसरों की तुलना मे अधिक साहसी, अधिक हठी था और इसी लिए उसकी ज़िन्दगी दूसरो से बुरी थी, मुश्किल थी। उसका भाई तेक्तीगुल तो मेमना था और इसी लिए भेड़िये उसे हड़प गये थे। मगर इस छोटे-से हठीले सेइत ने बाप का दिल और बाप का मिज़ाज पाया है। अगर किस्मत साथ देती, तो बाख़्तीगुल इन्सान बन जाता, ईमानदारी की ज़िन्दगी बिता सकता, अपने बच्चो को भरपेट खिला-पिला सकता! भगवान की दया से अक़्ल की भी कुछ कमी नही है बाख़्तीगुल में, बातचीत करने का ढंग भी आता है। बहुत कुछ कर सकता था बाख़्तीगुल... मगर क़िस्मत साथ नहीं देती, कहीं इन्साफ ही नहीं है। छूत की लाइलाज बीमारी की तरह ग़ुदा उसे भूख और बेइज़्ज़ती का शिकार बनाता रहता है।

अब तो बात बिल्कुल ही बिगड़ गई थी अब तो वह सात्मेन की आंखों मे काटे की तरह खटेगा। बीज बोये

है तो फल आयेंगे ही! कोज़ीबाक अपनी पूरी कोशिश करेंगे, एड़ी-चोटी का ज़ोर लगायेंगे। उनके पीछे सत्ता का ज़ोर है, उनका घर का हाकिम और अपनी हुकूमत है। ये सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं, चोर-चोर मौसेरे भाई हैं। अगर वे एक बार मुझे रंगे हाथों पकड़ लेंगे, तो—मैंने किया या नहीं किया, सब कुछ मेरे मत्थे मढ़ देंगे और सबसे पहले तो अपनी काली करतूतें ही। चोरी करेंगे उनके अपने लोग और चोर बनेगा वाख़्तीगुल। तब मुझे जेल की सभी मुसीबतों, आतंकों और अपमानों को सहन करना होगा।

सालमेन जानता था कि वाख़्तीगुल का किस चीज़ से दम ख़ुश्क किया जा सकता। वाख़्तीगुल दुनिया में सबसे अधिक तो जेल से डरता था। मुठ-भेड़ के समय वाख़्तीगुल ने कई बार अपने सामने मौत नाचती देखी थी, मगर उसे कभी झुरझुरी नहीं आई थी। पर अब वह ऐसे कांप रहा था मानो उसे ज़ोर का बुख़ार चढ़ा हो। जेल...बदबूदार और सड़ी हुई क़ब्र... वे उसे ज़िन्दा ही दफ़ना देना चाहते हैं। तेक्तीगुल की किस्मत फिर भी अच्छी थी।

और फिर सालमेन, वह तो जो कहता है, करके रहता है। वह तो इस गुस्ताख़ गुलाम के साथ बहुत ही बुरी करके रहेगा ताकि दूसरों को इस से नसीहत मिले। वह उसे जेल में भेजकर ही दम लेगा।

"क्या करूं?" वाख़्तीगुल अपने से पूछता और बीवी तथा बच्चों की भी शर्म न करते हुए फंदे में फंसे जानवर

की तरह जमीन पर पड़ा हताशा से छटपटाता रहता।

हातशा तो यही समझती थी कि पति फिर बेहोशी में बड़बड़ा रहा है और पूरी लगन से भगवान को याद करने लगती :

"हे खुदा, इसे वर्दाश्त करने की ताक़त दो—इसे मरने नहीं देना, हे अल्लाह! .."

एक दिन तो वह बिल्कुल ही हिम्मत हार गया। हातशा को अपने पास बुलाकर ऐसी अंट-शंट बकवास करने लगा जिसे पहले जबान पर लाते हुए उसे शर्म आती थी।

"नहीं बीवी... मेरी क्या बिसात है उन के सामने... मैं कर ही क्या सकता हूं!.."

ऐसे शब्द सुनकर बीवी को पहली बार पति के बारे में डर महसूस हुआ।

"क्या किसी से भी मदद नहीं ली जा सकती?"

बाख़्तीगुल ने कोई जवाब नहीं दिया, सोच मे डूब गया। ऐसे लगा कि उसने कुछ तो सोच ही लिया है! वह फौरन यह समझ गई। इसके बाद बाख़्तीगुल न तो कराहा और न बड़बड़ाया। वह घावों-खरोंचों से भरी हुई छाती को सहलाता हुआ चुप्पी साधे रहता।

एक हफ़्ता गुजरा तो बाख़्तीगुल ने बिस्तर छोड़ दिया। उसका रंग-ढंग देखकर हातशा समझ गई कि उसका विचार ठीक ही था। वह फिर से लम्बे सफर की तैयारी करने लगा।

चोर कोज़ीवाक उसका विश्वस्त और आज़माया हुआ घोड़ा तो अपने साथ ले गये थे, मगर बाख़्तीगुल के पास उसके जैसा ही एक और बढ़िया घोड़ा भी था। बड़ा जोशीला और तेज़ चालवाला कुम्मैत घोड़ा। उसने ज़रूरत पड़ने तक उसे अपने एक विश्वसनीय पड़ोसी मित्र के झुण्ड में छोड़ रखा था।

यह घोड़ा बहुत ही बढ़िया, बड़ा ही सुघड़, दुबला-पतला, चौड़ी छाती और पतले टखनोंवाला था। असीम स्तेपी में रहनेवाले ग़रीब से ग़रीब चरवाहे के पास भी दो-तीन घोड़े हो सकते थे, किन्तु ऐसा घोड़ा तो हर बाई के पास भी नहीं था। शायद हल्क़ेदार ही ऐसे घोड़े पर सवारी करता था।

अब कुम्मैत पर ज़ीन कसने की बारी आ गई थी। बाख़्तीगुल ने सुबह-सवेरे ही पुराने किस्म की बन्दूक़ में छर्रे भरे और जबड़े के घाव पर तेल लगाकर उसे मकड़ी के जाले से ढक दिया। सेइत ने उसे घोड़े की लगाम पकड़ाई और बाख़्तीगुल ने सिर हिलाकर उस से विदा ली। कुम्मैत बाख़्तीगुल को जंगलों से ऊपर, बहुत ऊंचे पहाड़ों और दुर्गम स्थानों की ओर ले चला।

झाड़-झंखाड़ और कंटीली झाड़ियों को लांघते हुए घुड़सवार को काफ़ी देर लग गई। दोपहर होने तक ही वह अगम्य झाड-झंखाड़ से निकल पाया। अब उसके सामने वनस्पतिहीन, विराट और आसमान की ओर जाती हुई ख़ून की तरह लाल चट्टानें थीं।

अपने सिर के ऊपर उनको लटकी हुई देखकर आदमी बरबस झुक जाता है। उनके पास जाते ही डर लगता है। ऐसी अनुभूति होती है कि उनके खामोशी के सदियो पुराने साम्राज्य मे खलल डालना गुनाह है। यहां न तो इन्सान नजर आता था और न ढोर ही। लाल चट्टानों में मनमर्जी से घूमनेवाले जंगली जानवर रहते थे, पर कोई शिकारी यहां भूले-भटके ही आता था। यहां पहुंचना कठिन था, लेकिन यहा से लौटना और भी कठिन।

वाख्तीगुल दबे पांव इस पथरीली विराट काया के पास पहुंचा, चुपके-चुपके नीचे उतरा और छायादार कन्दरा में घोड़े को बाधा। उसने लोमड़ी की खाल की टोपी उतारी, उसे क़मीज के नीचे दबाया, पीठ पर पेटी के साथ बन्दूक कसी और ऊपर चढ़ने लगा। चढ़ाई में ज़ोर लगाने के कारण उसके जबड़े के घाव से ख़ून की पतली-सी नमकीन धार बह कर वाख्तीगुल के मुंह के क़रीब पहुंच गई। वाख्तीगुल ने उसे चाट लिया।

उसने थके हुए घोड़े की भांति हाफते हुए चट्टान की गंजी चोटी पर चढ़ कर दम लिया।

अब उसे भूरे पत्थरोंवाला वह विस्तृत गड्ढा दिखाई दिया, जो नीचे से नजर नही आता था। उसे मालूम था कि इस गड्ढे के पीछे जीने के समान और हरियालीहीन वह ढाल है, जहा ढेरों-ढेर पहाड़ी बकरे रहते हैं। उस पर पत्थरो मे गायब होनेवाली अनगिनत पगडंडियों का जाल-सा बिछा हुआ है।

वाख़्तीगुल ने चट्टानी लहरों को बहुत ध्यान से देखा। गड्ढे के उस पार, उस वीरान ऊंचाई पर कोई नहीं था। सभी कुछ निर्जीव था, न कहीं कोई धड़कन थी, न गति। सभी ओर सुनसान था, नेत्रहीन और मूक... कितनी बार ही वाख़्तीगुल यहां बेकार भटकता रहा था, रेंग-रेंगकर यहां पहुंचा था और नुकीले पत्थरों ने उसके शरीर को खरोंचा था। तब उसे इसी बात की ख़ुशी हुई थी कि वहां से जीता-जागता और सही-सलामत लौट आया था। मगर इस बार उसे ख़ाली हाथ नहीं लौटना था। इस बार वह पत्थर से भी ज्यादा दृढ़ता का सबूत देगा।

इर्दगिर्द के पत्थरों के समान ही आकाश भी भूरा-भूरा था उदास था। पैवन्दों लगा भूरा चोगा पहने, रक्तहीन पीले-पीले चेहरेवाला, दुबला-पतला और हड़ीला वाख़्तीगुल ख़ुद भी पत्थर जैसा प्रतीत हो रहा था। पीठ पर से बन्दूक उतार कर वह छिपकली की भांति दबे-दबे, चोरी चोरी और आहट किये बिना गड्ढे के किनारे-किनारे चलने लगा। पर्वतो, पर्वतो! इस बेचारे को थोड़ी भीख ही दे दो!..

वाख़्तीगुल जब गड्ढे के उस पार पहुंचा तो दिन ढलने लगा था। अब उसे अपने सामने पहाड़ी बकरों की पगडंडियां दिखाई दीं।

ऐसा भी होता है कि क़िस्मत बदकिस्मत का भी साथ दे देती है। वाख़्तीगुल के एकदम नीचे पारदर्शी सलेटी धुंध में तीन पहाड़ी बकरे दिखाई दिये—झबरीला और गोल

सींगोंवाला नर और छोटी-छोटी पूंछों तथा पैने खुरोंवाली दो मादायें। वे जिधर से आये थे, उसी तरफ को मुंह करके अभी अभी रुके थे। चौकन्ने, सजग और पलक झपकते में छलांगें मारते हुए वे आंखों से ओझल होने को तैयार थे। उनके गठे हुए छरीले शरीरों में स्प्रिंग की सी लोच थी, उन्हें तो मानो पंख लगे हुए थे।

"ख़ुदा मदद करो..." उसने बन्दूक को सीधा करते और निशाना साधते हुए फुसफुसाकर कहा।

उसने नर का निशाना साधा, मगर बहुत ही हड़बड़ी में—उसके हाथ कांप रहे थे, बन्दूक की नली हिल-डुल रही थी और बकरे ने उसे देख लिया। बुज़दिल का अपना ही एक उसूल होता है—वह दूसरी बार मुड़कर कभी नहीं देखता। जैसे ही उसने यह महसूस किया कि कुछ गड़बड़-घुटाला है, वैसे ही वह एक ओर को कूदा और लम्बी-लम्बी छलांगें मारता फुर्ती और तेजी से जीने जैसी ढाल से नीचे भाग चला। मादायें उसी क्षण उससे आगे निकल गईं और पिस्सू की भांति छलांगें मारती आगे-आगे दौड़ने लगीं।

याग़ोगुल के हाथ अब मजबूत हो गये थे, वह लगातार नर की दिशा में ही बन्दूक को घुमाता जाता था। जब वह मादाओं को अपने पास बुलाते हुए एक ऊंची चट्टान पर पहुंचा तो बन्दूक से गोली निकली और जोर का धमाका हुआ। धुएं का नीला-सा बादल उभरा, के बीच धीरे-धीरे फैल गया और धुएं में से याग़ोगुल तेजी से आगे जा। बकरे को सिर के बल लोट-पोट होकर गिरते देखा।

बाख्तीगुल को अपनी सुध-बुध न रही और इस आशंका से कि बकरा उठेगा और भाग जायेगा वह तेजी से नीचे की ओर भाग चला। एक बग़ल पड़ा हुआ बकरा बुरी तरह तड़प रहा था। बाख्तीगुल ने छुरी निकाल कर उसकी गर्दन पर वार किया। सलेटी पत्थरों पर सुर्ख़ ख़ून फैल गया। बकरा छटपटाया और उसने दम तोड़ दिया। हांफता हुआ बाख्तीगुल भी उसके करीब ही ढह पड़ा।

इसके बाद उसने बकरे की खाल उतारी, अंतड़ियां निकालीं, धड़ को दो हिस्सों में काटा और मांस को खाल में लपेटा। वह दर्रे के रास्ते से घोड़े को लाया, मुश्किल से उस पर मांस लादा और उसे बालों के फंदे से बांधा।

घोड़े पर सवार बाख्तीगुल ने फिर से झाड़-झंखाड़ को लांघते हुए ही थोड़ा आराम किया। मगर वह घर की ओर नहीं गया...

शाम होते-होते बाख्तीगुल छायादार और तेज हवाओं से रक्षित घाटी में पहुंच गया। यहीं नदी के तट पर एक धनी गांव बसा हुआ था। यह पड़ोस के चेल्कार्क हल्के के हल्केदार जारासबाई का गांव था।

जारासबाई विख्यात व्यक्ति था, सो भी न केवल अपने हल्के में और न केवल अपने ओहदे, अपने पद के कारण। सारे इलाक़े में ही उससे ज्यादा मशहूर कोई हाकिम, मिर्ज़ा, हाजी या बाई नहीं था। स्वामी, व्यापारी और योद्धा के रूप में भी उसकी बड़ी प्रशंसा की जाती थी। सच तो यह है कि न तो धन-दौलत, न मान-सम्मान और

न समझ-बूझ की दृष्टि से ही कोई उसकी बराबरी कर सकता था।

इस आदमी से हर तरह की आशा की जा सकती थी—भलाई की भी, बुराई की भी, नेकी की भी और बदी की भी, सो भी ढेरों-ढेर!

"देखता हूं किस्मत आजमाकर..." गांव के पास पहुंचते हुए बाख़्तीगुल ने सोचा। "तंग आ गया हूं अकेले ही सब कुछ सहते-सहते..."

लगता था कि जारासबाई इसी नदी के तट पर जाड़ा बिताने जा रहा था। गांव के बहुत से निवासी पतझर की ठंड से बचने के लिये मिट्टी के झोपड़ो में बस भी चुके थे। शाम के झुटपुटे में सभी लोग घरो से बाहर रोशनी में निकल आये थे।

सबसे बड़े आगन के फाटक पर बाख़्तीगुल को एक लम्बा-तड़गा और मोटा-तगड़ा आदमी दिखाई दिया, महंगे फर की टोपी और अस्त्राख़ानी फ़र का बर्फ़-सा सफ़ेद कोट पहने हुए। उसका चेहरा एकदम सुर्ख़ था, चमकता हुआ, बहुत ही गम्भीर, बड़ा ही रोबीला। यह जारासबाई था! वैसे तो वह बाख़्तीगुल का हमउम्र ही था, मगर क्या ठाठ थे उसके, जरा कोई पास तो फटके... बहुत-से लोग उसे घेरे हुए थे—दो प्रतिष्ठित बुजुर्ग, सत्तरह वर्ष का उसका सबसे बड़ा, हृष्ट-पुष्ट बेटा और बहुत से जवान और बूढ़े टुकड़ख़ोर, जो मटमैले चूहों की तरह आटे की इस सफ़ेद बोरी को घेरे हुए थे।

वाल्तीगुल ने बड़े अदब से सलाम किया। पहाडी बकरे के टेढ़े सींगों पर नज़र डाल कर जारासबाई ने सिर हिला दिया। श्रीगणेश तो कुछ बुरा नही हुआ था।

फाटक मे से तंग मुंह की गागर उठाये हुए बाई की पहली बीवी सामने आई, उभरा-उभरा जोबन और सजा-संवरा हुआ चेहरा। उसने भी ख़ून से लथपथ टेढ़े-मेढ़े सींगोंवाले सुन्दर-पहाड़ी बकरे में दिलचस्पी जाहिर की और प्रशंसा से च-च.. करते हुए धीरे-धीरे घोड़े के गिर्द चक्कर लगाया। कुछ अन्य लोगों ने भी जिज्ञासावश ऐसा ही किया।

वाल्तीगुल ने बाई की बीवी को भी आदर से नमस्कार किया।

"लगता है कि यह तुच्छ-सी चीज़ आपको पसन्द है! आज सुबह आपके गांव की ओर आते हुए मैंने सोचा कि शायद बहुत अर्से से आपने जंगली शिकार नही देखा होगा, पहाड़ी बकरे का मांस नही चखा होगा... बस, मैंने घोड़े को पहाड़ों की ओर मोड़ दिया... कोई ख़ास अच्छा शिकार तो हाथ नही लगा... अगर आपको नापसन्द न हो तो ले लीजिये..."

बाई की बीवी ने छिपी-छिपी नज़र से पति की ओर देखा मानो उसकी इजाजत चाहती हो और डरती हो कि कहीं वह इनकार न कर दे। वाल्तीगुल मन ही मन मुस्कराया—नहीं, इसे इनकार नही करेगा।

"ले लो... किया ही क्या जा सकता है..." जारासबाई ने अलसभाव से कहा और इर्दगिर्द के लोगों को आंख मारकर साथ ही यह भी जोड दिया – "जानवर है तो हमारे ही पहाड़ों का। अगर यह खुद न देता, तो हम वैसे ही छीन लेते।"

सब ने ज़ोर का ठहाका लगाया। बाख़्तीगुल के दिल से मानो बोझ हट गया।

एक बुज़ुर्ग ने बेकरारी से हाथ झटककर कहा:

"लड़किया कहां हैं? ले जायें न इसे..."

बाख़्तीगुल ने अनुमान लगा लिया कि यह कैरनबाई है, बड़ा ही कंजूस-मक्खीचूस, दमड़ी-दमड़ी को दांत से पकड़नेवाला। वह जारासबाई के दिवंगत बाप का बहुत ही पक्का दोस्त था। अब सारे पशुओं का वही प्रवन्धक था और जारासबाई का दायां बाजू माना जाता था।

"कदीशा, ऐसा सोचना ठीक नहीं," जल्दी-जल्दी बोलते हुए कैरनबाई ने जारासबाई की बीवी से कहा, "कि अगर एक आदमी ने कोज़ीबाको की बेइज्ज़ती की, तो क्या उसके हाथ की हर चीज़ बुरी, छूने के नाकाबिल हो गई? इसे दुत्कारना नहीं चाहिये! कोई आदमी इसे भला लगे तो यह उसे अपना आख़िरी घोड़ा तक दे सकता है। यह सच है कि वह जिद्दी है, मगर कहते हैं कि सूरमा जिद्दी तो होते ही हैं..."

बाग़-बाग़ होते हुए बाख़्तीगुल ने उसे बहुत झुक कर सलाम किया और बोला:

"शुक्रिया, बड़े मियां। अब मैं क्या कहूं! आपने मेरी बात ज्यादा अच्छी तरह से कह दी है। बेशक मैं धुन का पक्का हूं, मगर किस्मत ही साथ नहीं देती। इसीलिये मिर्ज़ा के सामने अपने मन का भार हल्का करने आया हूं। पर आप की अक़्लमंदी के सामने मैं चुप रहा हूं। आप तो मुझे बहुत ही अच्छी तरह समझते-पहचानते हैं। जैसा आप चाहेंगे, वैसा ही होगा!"

हल्क़ेदार का बेटा दो नौकरानियों को आवाज़ देकर बुला लाया। उन्होंने घोड़े पर से बकरे को उतारा और अहाते की ओर ले चलीं। बाई के शैतान बेटे ने बकरे के सिर को अपने पेट के साथ सटाया और खिलवाड़ करते हुए इन नौकरानियों की पीठों मे बकरे के सींग चुभोने लगा।

जारासबाई इस तमाशे को देखता रहा और बाख़्तीगुल से उसने एक शब्द भी नहीं कहा। शायद वह किसी तरह से उसका अपमान नहीं करना चाहता था, मगर हल्क़ेदार हर ऐरे-ग़ैरे को मुंह भी तो नही लगा सकता था। बाख़्तीगुल न तो ख़ुद ही कोई बड़ा आदमी था और न कोई बहुत बढ़िया तोहफ़ा ही लाया था!

मगर दूसरा बुज़ुर्ग बाख़्तीगुल की ओर सहानुभूति से देख रहा था। यह सारसेन था, इस इलाक़े का एक बहुत ही पुराना क़ाज़ी। क़ाज़ियों के चुनाव के समय जारासबाई उसके अनुभव और मुख्यतः उसके यार-दोस्तों के बड़े दायरे को ध्यान में रखते हुए हमेशा उसका पक्ष लेता था।

जारासबाई और सारसेन बराबर की चोट थे।

"बेचारा जवान..." सारसेन ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा। "नेक ख्याल तो आधी कामयाबी होता है और मुझे लगता है कि तुम्हारे बहुत-से नेक इरादे हैं। पहले भी तो कई बार ऐसा हुआ है कि दुख-मुसीबतों के मारे और जिन्दगी के कड़ुवे घूंट पीनेवाले कई जवान परेशान होकर अपने गांव को छोड़कर भागे हैं। कहीं तुमने भी तो ऐसा ही नहीं सोच लिया?"

"बड़े मियां, बात तो कुछ ऐसी ही है," बाख्तीगुल ने कनखियों से हल्केदार की ओर देखते हुए जवाब दिया। "सोचा तो मैंने बहुत कुछ है, काफी कठिन भी...मगर आपकी नेकी का बदला चुकाने में कोई कसर नहीं छोड़ूंगा, अपनी पूरी जान लड़ा दूंगा।"

हल्केदार ने त्योरी चढ़ाई। आखिर उसने बाख्तीगुल से कहा:

"जो कुछ इस वक्त कह रहे हो वह तो सच ही लगता है। देखेंगे खाने की मेज पर क्या कहोगे। जिद्दी, चलो हमारे साथ घर में..."

बाख्तीगुल बेहद खुश होता हुआ बाई के पीछे-पीछे चल दिया।

"मैंने तो यहां आते ही बहुत कुछ कह डाला, मिर्जा। मन पर बहुत बोझ जो था!"

"अच्छा किया... शाबाश," बाई के मूड को देखते हुए खुशामदियों ने जवाब दिया।

मालिक के पीछे-पीछे ठीक अपने रुतबे के मुताबिक वे लोग अहाते और फिर उसके घर में गये।

वाख़्तीगुल को ऐसे घर में जाने का बहुत ही कम सौभाग्य प्राप्त हुआ था, शायद एक या दो बार ही, इसलिये वह दहलीज़ पर ही ठिठक कर रह गया। बड़े-से साफ-सुथरे और गर्म कमरे में मिट्टी के तेल का लैम्प जल रहा था, सूरज की तरह लौ देता हुआ। बाई की ऊंची गद्दी पर रंग-बिरंगे गद्दे बिछे हुए थे। दहलीज़ के पास से ही लाल कालीन बिछा हुआ था—उसे तो पैर से छूते हुए डर लगता था। दायी ओर को बहुत बढ़िया और निकल की पालिशवाला रूसी पलग था और उसके ऊपर दीवार पर बेल-बूटोवाला और भी बढ़िया कालीन टंगा हुआ था। वसन्त मे फूले और ओस मे चमकते हुए चरागाह की भांति यहा हर चीज सुन्दर ,चमक-दमकवाली और मनमोहक थी।

चरवाहे के धुएं से काले और ठडे तथा फटे-पुराने ख़ेमे में रहनेवाले बाख़्तीगुल के लिये ऐसे सजे-सजाये घर में आना बडा ही सम्मान था। ऐसे स्वर्गिक सुख के वातावरण मे रात बिताना तो और भी बडा सौभाग्य था। जब उसे तरह तरह के पकवानो से सजी हुई मेज पर अन्य मेहमानों के साथ बिठाया गया तो वह मानो भूल ही गया कि उसके पेट मे चूहे कूद रहे हैं, यद्यपि उसके मुंह में पानी भरा हुआ था। वह खाने पर टूट नही पड़ा। सभी समझ रहे थे कि इसके लिये उसे कैसे अपना मन मारना पड़ रहा है। शुक्र है ख़ुदा का कि बाई की बीवी ने ख़ातिरदारी में कोई कसर न रखी। बाख़्तीगुल ने उचित ढंग से मेज़बान

को धन्यवाद दिया और वह अपनी दर्द कहानी कहता रहा, सुनाता रहा... कटु और जहर बुझे शब्द अपने-आप ही उसके मुंह से निकलते रहे, निकलते रहे।

सभी बड़े चाव से, बहुत दिलचस्पी से उसकी बातें सुन रहे थे मानो वह कोई ख़ास ख़बर या अनोखी घटना सुना रहा हो। जब उसने जेल का भयानक नाम लिया तो बाई की बीवी चीख़ी, 'ऊई मा' कह उठी, बुज़ुर्गों के माथे पर बल पड़ गये और उन्होंने दुखी होते हुए सिर हिलाये। क़ाज़ी सारसेन ने अपनी दाढ़ी थाम ली। स्तेपी में रहनेवाले एक दूसरे के लिये मौत की कामना कर सकते हैं, मगर जेल की नहीं...

बाख़्तीगुल मन ही मन हैरान होता हुआ सोच रहा था–यह क्या मामला है कि बाइयों को उसपर दया आ रही है, वे बेइंसाफ़ी को समझ रहे हैं, अनुभव कर रहे हैं! यह घर, यह दावत, उनकी ऐसी चिन्ता, यह सब कुछ कहीं सपना तो नहीं है?

"मैं फटेहाल हूं, न कोई संगी-साथी है, न कोई मददगार..." बाख़्तीगुल कहता रहा, "झुण्ड से बिछड़ जानेवाले बछेरे की सी हालत है मेरी... एक ही चाह है मेरी–किसी ताकतवर के साथ चिपक जाऊं, कहीं कोई खूंटा मिल जाये मुझे। इसके लिये अपनी जान तक देने को, सब कुछ करने को तैयार हूं मैं।"

बाई की बीवी और जेठे बेटे ने जो घर का लाड़ला था बुज़ुर्गों का इन्तज़ार किये बिना ही खुले तौर पर कॉज़ीवाकों

को भला-बुरा कहना शुरू कर दिया। बाई की बीवी और बेटा इस जाने-माने चरवाहे को एकटक देख रहे थे। ऐसे नौकर और मित्र पर किसी को भी गर्व हो सकता है।

काज़ी सारसेन ने भी मेजबान के बोलने से पहले ही कहा :

"ख़ैर नौजवान, देखेंगे कि तुम्हारे मुह में क्या है और बग़ल में क्या! रोना-धोना बन्द करो और हमारे मालिक का दामन थाम लो। कसकर थामे रहना इसे! जीवन में भला-बुरा और ऊंच-नीच देखे हुए तथा तुम जैसे चुस्त और फुर्तीले, शैतान और भगवान से न डरनेवाले लोगों की उसे बड़ी जरूरत भी है... अगर दिल लगाकर ख़ूब मेहनत से काम करोगे तो मालिक का छोटा भाई और उसके बेटे का चाचा, घर का अपना ही आदमी बन जाओगे। तब तुम्हारा कोई बाल भी बाका नही कर पायेगा! उसकी छत्र-छाया में न तो कोई अदालत और न कोई सत्ता ही तुम्हारा कुछ बिगाड़ सकेगी। ख़ुद गोरा जार भी तुम्हे नहीं पा सकेगा, न जिन्दा न मुर्दा! ख़ुदा ने चाहा तो आज नही तो कल अपने दुश्मनों से हिसाब चुका लोगे, उन्हें उनकी काली करतूतों की याद दिलाओगे, उन्हें अपनी ताकत दिखा पाओगे।"

बाक़्तीगुल सुन रहा था, उसे अपने कानों पर विश्वास नही हो रहा था। आख़िर इतनी मेहरबानी किसलिये? यह प्रतिष्ठित बुज़ुर्ग काज़ी किस बात का संकेत कर रहा है? "घर का आदमी हो जाओगे... आज नही तो कल..."

वाख़्तीगुल को मालूम था कि वहुत अर्से से कोज़ीवाकों और जारासबाई की आपस मे लगती चली आ रही है। वे इस इलाक़े के दो छोर, दो तट और दो पर्वत थे। ऐसे ही तो वाख़्तीगुल यहां नही भागा आया था। जारासबाई मुझ वदक़िस्मत, मुझ गरीब भगोड़े का भाई वनेगा? मामला ऐसा रुख़ ले लेगा, उसने ऐसी आशा नही की थी। उसने जो चाहा *था*, *क़िस्मत उससे कही ज्यादा मेहरबान साबित हो* रही थी।

वाख़्तीगुल तो जेल के डर से भागकर यहा आया था और अपने रक्षक का दास बनने को तैयार था। पर उसकी ओर तो इस तरह हाथ बढ़ाया गया मानो स्तेपी में उसके लिये इज्ज़त भी हो, इन्साफ़ भी हो!

मगर जारासबाई ने अपना ख़्याल जाहिर करने की जल्दी नही की। वह पहले की तरह ही दूसरों की बातें मानो उपेक्षापूर्वक सुनता रहा। उसके गर्वीले और उपहासपूर्ण चेहरे से यह समझ पाना कठिन था कि उसका क्या विचार है। इतना भी अच्छा है कि वह सुनता जा रहा है, टोकता नहीं है... अगर मुझ गरीब के सब्र की परीक्षा लेना चाहता है, तो भी ठीक है। हो सकता है कि असमंजस में हो? *मुमकिन है कि सुनता रहे*, सुनता रहे और फिर मुंह फेर ले। न अपनाये, न इनकार करे...

उस शाम को वाख़्तीगुल यह न जान सका कि बाई का क्या विचार है। बाई हंसता, मज़ाक करता, मेहमानों और टुकड़खोरों से विदा लेकर सोने चल दिया। जाते-जाते उसने

वाख़्तीगुल की ओर उसी तरह जरा सिर हिला दिया, जैसा कि उसने मुलाक़ात होने पर किया था। सभी ख़ुश-ख़ुश मेज पर से उठे—बाई ख़ुश था, बड़े रंग मे था, उसका मूड बहुत अच्छा था।

तड़के से ही बाई के अहाते में फरियादी आने लगे। उनका तांता-सा बंधा रहा। बाख़्तीगुल ने अपने कुम्मैत घोड़े पर जीन कसा और यह जाहिर करते हुए एक ओर को खड़ा हो गया कि बाई जैसा कहेगा वह वैसा ही करेगा—जाने को भी तैयार और रुकने को भी। नाश्ते के बाद बाई बाहर आया। "थोड़ी उम्मीद ही बंधा दे..." बाख़्तीगुल की नजर यह दुआ मांग रही थी। जारासबाई उसके पास से निकल गया, उसने उसकी ओर आंख उठाकर देखा भी नहीं। मगर बाख़्तीगुल ने दूसरों के जाने तक इन्तजार किया और फिर से नजर के सामने आया।

"क्या चाहते हो तुम, भले मानस?" थकान से हांफते हुए बाई ने पूछा।

बाख़्तीगुल तनकर खड़ा हुआ और उसके नजदीक आकर बोला:

"क़सम खाकर कहता हूं कि जिन्दगी भर तुम्हारी ख़िदमत करूंगा। जहां मनमाने भेज देना। मनमाना हुक्म देना। तुम्हारा छोटा भाई और तुम्हारे बेटे का चाचा बनकर रहूंगा... बुजुर्ग सारसेन ने क्या ऐसा ही नहीं कहा था?"

"इसकी काफी चर्चा हो चुकी है," जारासबाई ने रुखाई से जवाब दिया। "तुम्हारी क़सम को मैं याद

वाख़्तीगुल को मालूम था कि बहुत अर्से से कोज़ीबाकों और जारासबाई की आपस मे लगती चली आ रही है। वे इस इलाक़े के दो छोर, दो तट और दो पर्वत थे। ऐसे ही तो वाख़्तीगुल यहां नही भागा आया था। जारासबाई मुझ बदकिस्मत, मुझ ग़रीब भगोड़े का भाई बनेगा? मामला ऐसा रुख़ ले लेगा, उसने ऐसी आशा नही की थी। उसने जो चाहा था, किस्मत उससे कहीं ज्यादा मेहरबान साबित हो रही थी।

वाख़्तीगुल तो जेल के डर से भागकर यहां आया था और अपने रक्षक का दास बनने को तैयार था। पर उसकी ओर तो इस तरह हाथ बढ़ाया गया मानो स्तेपी में उसके लिये इज्ज़त भी हो, इन्साफ भी हो!

मगर जारासबाई ने अपना ख़्याल ज़ाहिर करने की जल्दी नही की। वह पहले की तरह ही दूसरों की बातें मानो उपेक्षापूर्वक सुनता रहा। उसके गर्वीले और उपहासपूर्ण चेहरे से यह समझ पाना कठिन था कि उसका क्या विचार है। इतना भी अच्छा है कि वह सुनता जा रहा है, टोकता नहीं है... अगर मुझ गरीब के सब्र की परीक्षा लेना चाहता है, तो भी ठीक है। हो सकता है कि असमंजस में हो? मुमकिन है कि सुनता रहे, सुनता रहे और फिर मुंह फेर ले। न अपनाये, न इनकार करे...

उस शाम को वाख़्तीगुल यह न जान सका कि बाई का क्या विचार है। बाई हंसता, मज़ाक़ करता, मेहमानों और टुकड़खोरों से विदा लेकर सोने चल दिया। जाते-जाते उसने

बाख़्तीगुल की ओर उसी तरह ज़रा सिर हिला दिया, जैसा कि उसने मुलाक़ात होने पर किया था। सभी ए़ुश-ख़ुश मेज़ पर से उठे – बाई ख़ुश था, बड़े रंग में था, उसका मूड बहुत अच्छा था।

तड़के से ही बाई के अहाते में फ़रियादी आने लगे। उनका ताता-सा बंधा रहा। बाख़्तीगुल ने अपने कुम्मैत घोड़े पर ज़ीन कसा और यह ज़ाहिर करते हुए एक ओर को खड़ा हो गया कि बाई जैसा कहेगा वह वैसा ही करेगा – जाने को भी तैयार और रुकने को भी। नाश्ते के बाद बाई बाहर आया। "थोड़ी उम्मीद ही बंधा दे..." बाख़्तीगुल की नज़र यह दुआ माग रही थी। जारासबाई उसके पास से निकल गया, उसने उसकी ओर आंख उठाकर देखा भी नहीं। मगर बाख़्तीगुल ने दूसरों के जाने तक इन्तज़ार किया और फिर से नज़र के सामने आया।

"क्या चाहते हो तुम, भले मानस?" थकान से हांफते हुए बाई ने पूछा।

बाख़्तीगुल तनकर खड़ा हुआ और उसके नज़दीक आकर बोला :

"क़सम खाकर कहता हूं कि ज़िन्दगी भर तुम्हारी ख़िदमत करूंगा। जहां मनमाने भेज देना। मनमाना हुक्म देना। तुम्हारा छोटा भाई और तुम्हारे बेटे का चाचा बनकर रहूंगा... बुज़ुर्ग सारसेन ने क्या ऐसा ही नहीं कहा था?"

"इसकी काफ़ी चर्चा हो चुकी है," जारासबाई ने रुखाई से जवाब दिया। "तुम्हारी क़सम को मैं याद

रखूंगा। मगर...कुछ इन्तज़ार करना होगा, अफवाहों और शोर-शराबे के ख़त्म होने तक। छोटी-मोटी बातों को लेकर मैं इस समय कोज़ीबाकों से उलझना नही चाहता। वक़्त आने पर मैं तुम्हें ख़ुद बुलवा भेजूंगा, चैन से सोने नही दूंगा। तब देखेंगे कि कैसे तुम अपनी क़सम निभाते हो... फिलहाल इतना ही कहूंगा कि तुम हम से कटे-कटे न रहना, अवसर आते रहा करो। मेरे लोगों को तुम पसन्द आये हो, घरेलू काम-काज मे उनकी मदद करना, वे तुम्हारे लिये कोई न कोई काम ढूंढ लिया करेंगे। बाद मे मैं तुम्हे कोई ढंग का काम दे दूंगा। अच्छा, अब जाओ।"

बाल्तीगुल की ख़ुशी का कोई ठिकाना न रहा, उसे तो आभार प्रकट करने के लिये शब्द तक न मिले।

"प्यारे... मेहरबान हल्क़ेदार... तुम तो मेरे लिये बाप से भी बढकर हो... सोचता था...मुंह फेर लोगे... बढ़-चढ़ कर बाते करने के लिये माफी चाहता हूं," – उसने घोड़े की लगाम पकड़कर खीची। घोड़े ने शान से सिर झटका। "तुम्हारे प्यार, तुम्हारे इस बर्ताव के लिये बड़ा शुक्रगुज़ार हूं... अगर मैं इसका बदला न चुकाऊं, तो ख़ुदा मुझे कभी माफ न करे... इस घोड़े पर तुम्हारे बेटे जांगाज़ी को बैठाना चाहता हूं! जब मुझे तुमने अपना ही मान लिया, तो फिर क्या बात है, ले ले यह घोड़ा, करे इसपर सवारी..."

बाई चुप रहा, न उसने स्वीकार किया, न इनकार, मगर उसके चेहरे पर ख़ुशी झलक उठी। बाल्तीगुल लपककर

घर की ओर गया और उसने जांगाजी को जोर से पुकारा। घोड़ा बड़ी तेज चालवाला था, दुर्लभ था। इसीलिये उसे उपहार में देते हुए बड़ी ख़ुशी हो रही थी।

बाप की तरह बाई के बेटे ने भी न तो इनकार किया और न धन्यवाद ही दिया। मगर चेहरे से जाहिर था कि लड़का बहुत ख़ुश है। बेशक वह अभी किशोर था, उसकी खेलने-खाने की उम्र थी, वह अक़्ल का कच्चा था, मगर घोड़ों की उसे ख़ूब समझ थी।

बाई की बीवी ने भी बाख़्तीगुल को ख़ाली हाथ नहीं जाने दिया। उसने घर के बने लहसुनवाले सासेज और बछेरे के कुछ बड़े-बड़े और लज़ीज़ टुकड़े उसके साथ बांध दिये। बाख़्तीगुल स्नेह-स्निग्ध और हर्ष-विभोर होता हुआ घर लौटा।

दो दिन बाद जांगाजी उसके ख़ेमे में आया, कुछ देर बैठा, बातचीत करता रहा और बाप की तरफ से सलाम कहा। उसके बाद ख़ेमे से बाहर निकला, कुम्मैत घोड़े को खोला, उछलकर उस पर सवार हुआ और अपने गांव की ओर चल दिया। तेज घोड़ा उसके नीचे ख़ूब जंच रहा था, बाज की तरह उड़ा जा रहा था।

५

बाख़्तीगुल के लिये अजीब-सा और सुख-चैन का अनजाना-सा जीवन आरम्भ हुआ।

पहले जाड़े में ज़ारासबाई ने उसे कुछ दूर-दूर ही रखा, अपने दफ़्तरी काम-काज के नज़दीक नहीं आने दिया। यह तो ज़ाहिर ही है कि वाख्तीगुल हाथ पर हाथ धरे नहीं बैठा रहता था। लेकिन अब उसे भूख और अपमान का जीवन नहीं बिताना पड़ता था। उसकी पुरानी कुख्याति धीरे-धीरे मिटने और अतीत की कहानी बनने लगी।

ज़ारासबाई के यहा जब बडी बैठकें होती तो उनमें वंशों के मुखिया और सरदार "प्यादों में घुड़सवार" भाग लेने आते। ज़ारासबाई उनके सामने जब-तब अपने नये नौकर की प्रशंसा करता, उसके दुख-दर्दों, मुसीबतों और सब्र का बखान करता। सारसेन और कैरनबाई भी यही राग अलापते हुए नेक काम के लिये हल्क़ेदार की तारीफ़ करते। खुदा करे कि रात के इस उठाईगीरे को नज़र न लग जाये, जिसे ज़ारासबाई ने ईमानदार आदमी बना दिया है, जिसके ग़ुस्से से भरे और कठोर दिल में नेकी और भलाई भर गई है।

"सही रास्ते पर चल रहा है... इन्सान बनता जाता है..."

घोड़ों की तरह मोटे-ताज़े और अपने वंशों के घमंडी मुखिया इस भगोड़े चरवाहे को ध्यान से देखते। बाइज़्ज़त लोग उसकी पीठ थपथपाते, उससे बातचीत करते। गहरी समझ-बूझ रखनेवाले यह समझ जाते कि इस जवान पर ज़ारासबाई ख़ास आशाएं लगाए हुए है।

निठल्लेपन के कारण वाख्तीगुल परेशान हो जाता था।

आराम का जीवन उसके लिये भारी मुसीबत था। चील को आसमान में ऊंची उड़ान भरे बिना और घोड़े को दौड़े बिना चैन नहीं मिलता। उसने अपना पूरा ज़ोर लगाकर जारामबाई की सेवा करने की कोशिश की। बेशक लगता तो यही था कि घोड़ो को चराने के सिवा वह जीवन में कुछ भी नहीं जानता, फिर भी वह जो भी काम हाथ में लेता, उसे खूब बढ़िया ढंग से पूरा करता। मगर गांव का काम-काज – यह भी कोई काम होता है? इसके लिये भला उसकी ताक़त की ज़रूरत थी? उसे तो औरतें कर सकती हैं।

गर्मी में कुत्ते की इधर-उधर डोलनेवाली ज़बान की तरह बाब्तीगुल सुबह से शाम तक गांव में दौड़-धूप करता और इधर-उधर दौड़ता रहता। वह किसी चीज़ की मरम्मत और सफ़ाई करता, कुछ उठाकर लाता, ले जाता, कुछ हिलाता-डुलाता मानो उसे चैन से बैठना सुहाता ही न हो। काम का उसका जोश और घर-गृहस्थी में उसकी गहरी दिलचस्पी देखकर पैनी नज़र रखनेवाला कैरनबाई तो बिल्कुल ही मोम हो गया। भेड़ की चर्बी के पिघलने पर जैसे उसके ऊपर चकत्ते आ जाते हैं, वैसे ही अब उसके गालों पर मुस्कान खिली रहती। बहुत ही प्यारा नज़ारा होता है किसी को अपने लिये पीठ दोहरी करते और पसीना बहाते हुए देखना।

"काम को वह बहुत ही तुरत-फुरत निपटा डालता है। हर फन मौला है। हिसाब-किताब में भी कुछ बुरा नहीं! दे तो जाये उसे कोई धोखा..." कैरनबाई मुखिया से कहता।

"बेचारा मुसीबत का मारा है, असहाय है। उसपर ख़ुदा की नजर सीधी नही है, इसीलिये गरीबी का शिकार है। वरना काम-काज मे ऐसा होशियार आदमी ग़रीब रहे?" कैरनबाई दूसरो से कहता।

घोड़ों और भेडों को चराने से लेकर वसन्त मे बुआई और पतझर में कटाई करने तक का हर काम बाख़्तीगुल अच्छी तरह से जानता था। नये चरागाह ढूंढने, वक़्त पर घास सुखाने या जरूरत पडने पर सफ़ेद रोटी पकाने का अथवा ऐसा कोई भी काम बाख्तीगुल आसानी से और अन्य किसी भी चरवाहे, रखवाले या रसोइये से जल्दी कर डालता था।

वह नौकर से मददगार और फिर सलाहकार बन गया— सो भी अकेले बाई के घर में या बाई की बीवी के लिये ही नही, सभी अड़ोसियों-पड़ोसियो के लिये भी। लोग उसके पास काम-काज और घर-गृहस्थी के मामलों मे सलाह लेने आते। उम्र मे बहुत बड़ा न होते हुए भी वह उनके बीच सुलाह कराता, उन्हें राह दिखाता और समझाता-बुझाता। कुछ समय गुजरने पर वह गाव भर मे दूरदर्शी कहलाने लगा।

हल्केदार धीरे-धीरे उसे अपने दफ्तरी काम-काज मे भी हाथ बंटाने की इजाजत देने लगा। एक काम, फिर दूसरा काम सौपा... बाख्तीगुल फिर से इधर-उधर घोड़ा दौड़ाने लगा, मगर चरवाहे का डंडा लिये हुए नही, कधे पर सन्देशवाहक का थैला डाले हुए। यह थैला विश्वास और

सत्ता का द्योतक था। अब तो वह ख़ुद अपने को नही पहचान पाता था।

बाई के काम-काज मे उलझा हुआ वाख़्तीगुल अपना ध्यान रखना भी नही भूलता था। जब वह स्याही से लिखे और मुहर लगे महत्त्वपूर्ण कागज़ात का थैला लेकर सारे हल्क़े मे घूमता-फिरता तो कुछ छोटे-मोटे माल भी अपने साथ ले लेता और उन्हे इच्छुक ख़रीदारो को बेच कर कुछ मुनाफा कमा लेता। बहुत-से लोग उसके आने और यह जानने के इन्तज़ार मे रहते कि वह क्या लेकर आयेगा। वसन्त मे वाख़्तीगुल ने पहले की तुलना मे अपने लिये तिगुनी-चौगुनी ज़मीन की बोवाई कर ली। जारासबाई ने जरा भी आपत्ति नही की, क्योंकि कैरनबाई ने उसे बीज ले जाने की अनुमति दी थी।

साल्मेन के समान उसे यहा भी कोई वेतन नही मिलता था। पर इतना तो था कि जारासबाई उसकी पिटाई नही करता था, उसे आराम से जीने देता था। हातशा ने अगले जाड़े के लिये काफी मात्रा मे मास, आटा, घी, सफेद नमक और बिल्कुल बाई के घर जैसी गन्धक की पीली दियासलाइया और पक्के धागे जमा कर लिये। वह ख़ुद भी बाई के गाव में कुछ न कुछ काम करती रहती, बाई की बीवी की सेवा करती और गर्मी भर में ही स्पष्टतः काफी स्वस्थ हो गई और उसकी पोशाक में भी बहुत सुधार हो गया। बाई के घर के उतारे-पुतारे कपड़े उसे

ख़ूब जंचते और अपने पुराने कपड़ों से उसने बच्चों की पोशाकें बना दीं। वे अब नंगे या चिथड़ों में नहीं घूमते थे।

जाड़े में ही जारासबाई ने बाख़्तीगुल से कहा था:

"बेटे को कुछ पढ़ाना-लिखाना चाहते हो? यहां ले आओ उसे।"

यह तो बहुत ही बड़ी मेहरबानी थी।

हल्क़ेदार के गांव में एक जवान कज़ाख़ जुनूस रहता था। उसने रूसी स्कूल की पढ़ाई पूरी की थी और पढ़ा-लिखा होने के कारण ही उसे मुल्ला कहा जाता था। वह खाते-पीते लोगों के घरों के दो-तीन लड़कों को पढ़ाता था, हल्क़ेदार का बेटा जागाजी भी उसी से तालीम पाता था। अपने भाग्य को सराहता हुआ बाख़्तीगुल अपने बेटे सेइत को मुल्ला के पास ले गया।

"वहां जाकर पढ़े-लिखे तो ढंग का आदमी बन जायेगा," बाख़्तीगुल ने बेटे से कहा और सेइत ने इन अद्भुत शब्दों को गांठ बांध लिया।

जाड़े भर सेइत रूसी ककहरे को दोहराता रहा, उसने उसे ऐसे रट लिया मानो वह दुख-मुसीबत से लोगों को उबारने वाला कोई मन्त्र-टोना हो। उसका पढ़ाई में बहुत मन लगता था और वह बहुत जल्द ही बाई के आलसी, बिगड़े हुए और मूढ़ बेटों से आगे निकल गया।

मुल्ला प्यार से सेइत से कहता:

"बड़ा होकर मुल्ला बनेगा।"

सेइत को अक्सर देर तक रातों को नींद न आती। वह कल्पना करता रहता कि कैसे बड़ा होकर मुल्ला बनेगा।

करता रहा। वह ताड़ गया कि लोग अब उसे उसी नजर से देखते हैं, जिस नजर से कभी वह ख़ुद साल्मेन के कारिन्दों को देखा करता था। चरवाहे की ख़ुशी फ़ौरन हवा हो गई।

साल्मेन ने अभी तक किसी तरह की कोई परेशानी पैदा नहीं की थी। लगभग एक साल गुज़र गया, किन्तु आरासबाई ने भी साल्मेन की कोई चर्चा नहीं की। घाक्लीगुल ने यह

समझने की कोशिश की कि हल्केदार के मन में क्या है। वह जितना अधिक इसके बारे में सोचता, उतना ही अधिक उसका मन उदास होता। यह थी धोखे की दुनिया और ख़ामोशी थी सन्देहों से ओतप्रोत।

पतझर में चुनाव होनेवाले थे और साल शुरू होने के साथ चेल्कार, बुर्गेन और अन्य स्थानों पर वंशों के बीच छिपी-छिपी और उलझी-उलझायी खींचातानी शुरू हो गई थी। हर महीने यह अधिकाधिक उग्र और खुला रूप लेती जाती थी।

"यहां किसी तरह की नेकी की उम्मीद नहीं करनी चाहिये," दूरदर्शी वाख़्तीगुल ने अपने आपसे कहा। मगर वह किसी तरह भी यह नहीं भाप सकता था कि मुसीबत किस रूप में उसके सामने आयेगी।

झगड़े अधिकाधिक उग्र रूप लेते जाते थे। वे मामूली लोगों के लिये अनबूझ थे, उनकी समझ से परे थे। ये बहुत पहले से ही हल्के की सीमा से कहीं दूर जा चुके थे और उन्होंने लगभग आधे विराट प्रदेश को अपनी लपेट में ले लिया था। शक्तिशाली धनी वंश, बाई और मुखिया इनमें उलझ गये थे, उन्होंने गड़े मुर्दे उखेड़ना और पुराने झगड़ों की आग को हवा देना शुरू कर दिया था।

कमजोर वंश सहारा ढूढते थे और ताकतवर अपने साथी। चुनाव जैसे-जैसे नजदीक आते गये, वैसे-वैसे हल्कों में दो बड़ी ताकतें साफ़ तौर पर सामने आ गईं। एक का मुखिया था चेल्कार हल्के का हल्केदार जारासबाई और दूसरी का—बुर्गेन्स्क हल्के का मुखिया साल्मेन का भाई—साट। दोनों के

अपने-अपने छिपे हुए दलाल और प्रतिद्वन्द्वी के शिविर में भाड़े के टट्टू भी थे।

ऐसा प्रतीत हो सकता था कि चेल्कार में जारासबाई की जो स्थिति थी, उसकी तुलना में साट अपने हल्के में ज्यादा ताकतवर और मजबूत था। साट को अनेक, एकजुट तथा घमंडी फौजीवाक परिवारों का समर्थन प्राप्त था। जारासबाई के पक्ष में केवल दो-तीन धनी और प्रभावशाली वंश थे। मगर स्तेपी में भला ऐसे दो वंश भी हो सकते हैं, जिनमें आपसी दुश्मनी न हो? लेकिन प्रदेश में चालाक जारासबाई के घमंडी साट और सभी अन्य हल्क़ेदारों से कहीं अधिक सम्पर्क-सम्बन्ध थे। इसलिए उन सबकी नकेल जारासबाई के हाथ में थी।

सख़्त गर्मी में स्तेपी में भड़क उठनेवाली आग की तरह ये झगड़े अधिकाधिक तेज़ी पकड़ते गये।

सुनहरे पट्टोंवाले रूसी कर्मचारी अर्थात् प्रादेशिक सचालक के दफ्तर में सभी तरह की चालाकी भरी चुगलियों और शिकायतोंवाले कागज पहुचने लगे, जिनपर ढेरों हस्ताक्षर होते और वंशों की मुहरें लगी होती।

साट के हिमायती मुखियों ने जारासबाई की मनमानी के बारे में ख़ूब जी भर कर शिकायते की। हर बार उसकी जांच की जाती और उसे अपमानजनक तथा बड़े-बड़े जुर्माने देने पड़ते। मगर जारासबाई हर बार बिल्कुल बचकर निकल आता। दूसरी ओर साट नगर में जाकर फंस गया। जारासबाई की चुगली के फलस्वरूप साट को पन्द्रह दिन

के लिये प्रादेशिक जेल में बन्द कर दिया गया। सिर्फ़ ख़ुदा ही जानता है कि ऐसा मार्का मारने के लिये जारासबाई ने कितनी तिकड़मबाज़ी की, कितनी रकम लुटाई। मगर था यह बहुत बड़ा काम।

सभी ओर यही चर्चा होने लगी:

"ख़ुद तो आ गया बिल्कुल दूध धोया... और उसके मुंह पर ख़ूब कालिख पोत दी, अच्छी तरह उसकी जड़ों में पानी दे दिया... पन्द्रह दिन-रातों तक जेल में बन्द करवा दिया! वाह बाई, वाह!"

जारासबाई की इस कामयाबी के बाद उसके हिमायतियों की संख्या बढ़ गई, विरोधी भी ज्यादा हो गये। जहां डर है, वहीं डाह भी।

मुखिया चरागाहों में लगातार घोड़े कुदाते फिरते रहते। वे कहीं ख़ुशामद करते तो कहीं धमकी देते। उस साल गर्मी भी ख़ूब कड़ाके की पड़ी और उन्हें चैन से पानी पीने तक की फ़ुरसत नहीं मिली। चुनाव, चुनाव... तीन सालों के लिये हुकूमत!

जारासबाई ख़ूब ज़ोर-शोर से साट के पक्ष की कमज़ोरियों-ख़ामियों को खोजता रहता। वह अपने गिर्द ऐसे लोगों को जमा करता, जो साट से नाख़ुश थे, जिनका उसने अपमान किया था, जो डांवांडोल थे या ऐसे ही आवारा क़िस्म के थे। वह उनपर ख़ूब पैसा लुटाता, उनकी जेबें गर्म करता और जहां-तहां पशु बांटता फिरता। उसे मालूम था कि साट भी ऐसा ही कर रहा था इसलिए वह अपने लोगों पर कड़ी

[illegible]
तलाश की गई तो चोरों का सुराग़ मिल गया। बुर्गेन में जारासबाई के भाड़े के वफादार टट्टू ने ख़बर दी कि साट के आदेशानुसार साल्मेन के लोग घोड़ों को ले भागे हैं। पीछा करनेवाले चोरों के पीछे-पीछे ही वहां जा पहुंचे। जारासबाई के जवानों ने घोड़े लौटाने की मांग की, मगर साल्मेन ने बड़ी बेहयाई से उन्हें गन्दी-गन्दी गालियां दीं और आवाज़ें कसते हुए गांव से निकलवा दिया।

जारासबाई को रात भर नींद नहीं आई—गुस्से से उसका दम घुटता रहा। पौ फटते ही उसने तनिक देर नहीं की

श्रौर सारसेन को श्रादेश दिया कि वह शिकायत लिखकर कागज नगर में भिजवा दे। बाख़्तीगुल को श्राशा थी कि हल्केदार कागज़ देकर उसे ही भेजेगा, मगर बाई ने ऐसा नही किया । बाख़्तीगुल ने हैरान श्रौर नाराज होकर घोड़े का जीन खोल दिया। सारी सुबह बाई के बड़े-से ख़ेमे के पास लोगों की भीड़ लगी रही, उसमे से लोगों की बातचीत की ऊंची श्रावाजें श्राती रही। बुजुर्ग वहा वाद-विवाद करते थे, बुरा-भला कहते थे श्रौर धमकियां देते थे।

दोपहर होने पर जब सफ़ेद दाढियोवाले सभी बुजुर्ग चले गये श्रौर ख़ेमों की छाया में गर्मी से बचते, ठंडे श्रौर ताजादम करनेवाले दही की, जिसे कुमीस कहते है, चुस्किया लेने लगे, केवल तभी जारासबाई ने बाख़्तीगुल को श्रपने पास बुलाया। बाख़्तीगुल ने जैसे ही बाई का तमतमाया हुश्रा श्रौर ऐसा चेहरा देखा जिसपर एक रंग श्राता श्रौर एक रंग जाता था, वैसे ही उसका माथा ठनका। नाक-भौंह सिकोड़े, चाबुक हिलाता हुश्रा श्रौर बाइयों में से सबसे हट्टा-कट्टा, धीर-गम्भीर श्रौर काला कोकिश *मालिक के दाईं श्रोर खड़ा था।*

जारासबाई ने बाख़्तीगुल को श्रपने पास बिठाया, उसे कुमीस डालकर दिया श्रौर स्वयं बढ़िया प्याले से चुस्कियां लेते हुए उसने यहां से बातचीत शुरू की कि जैसा कि सभी जानते है श्रौर सभी ने श्रपनी श्रांखों से देखा है, ख़ुदा की मेहरबानी से बाख़्तीगुल का पिछला पूरा साल कुछ बुरा नहीं गुजरा है। बाई ने उसे किसी तरह के ऊल-जलूल कामों में नही फंसाया श्रौर उसकी शक्ति को मर्दों के लायक काम की

ख़ातिर बचाये रखा। अब बाल्तीगुल समझ गया कि उसके अजीब ढंग के शान्त और आसान जीवन का अन्त हो गया।

"जब तक डंडा हाथ मे नही लेंगे, तब तक कमीने गीदड़ दुम दबाकर नही भागेंगे," जारामबाई ने कहा।

कोकिश ने थूका और बूट पर चाबुक मारा। बाल्तीगुल का हाथ काप गया और कुमीस नीचे गिर गया।

चरवाहा समझ गया कि अब सब से अधिक भयानक बात होने जा रही है-पुरानी बदकिस्मती फिर से सिर उठाने जा रही है।

"चुपचाप बैठे रहेंगे तो बाज़ी हार जायेंगे," हल्केदार कहता गया। "बैठे बैठे मुह ताकते रहेंगे तो वे हमारी गर्दनो मे तौक और जानवरो के गलों मे फंदा डाल देंगे। हमारे लोगों को मार डालेंगे और घोड़ों को हांक ले जायेंगे। अपने ही लोग कौड़ियों के बदले हमारा भडाफोड कर डालेंगे... लगता है, बाल्तीगुल, कि वह घड़ी आ गई, जिसका हम-तुम साल भर इन्तज़ार करते रहे हैं।"

बाल्तीगुल चुप रहा।

"आज ही तुम अपनी पसन्द और भरोसे के कोई दसेक जवान चुन लो और बस, ख़ुदा का नाम लेकर चल दो! साल्मेन या साट के झुण्ड खोजने की जरूरत नही, किसी भी कोज़ीबाक परिवार पर टूट पड़ो। बढ़िया नसल के घोड़ों का झुण्ड भगा लाओ। चुन तो तुम सकते ही हो... तुम्हारे लिए यह कोई नई बात तो है नही..."

बाख़्तीगुल चुप्पी साधे रहा। उसने ख़त्म न किये हुए कुमीस वाला प्याला एक तरफ रखा और अपने कुरते से हाथ पोंछे। उसे अपने गले में फांस-सी अनुभव हुई।

"वह घड़ी आ गई, जिसका इन्तज़ार था..." यह सब क्या है? क्या बहुत दिन गुज़र चुके हैं कि जब जारासबाई एक पालतू जानवर की तरह मुझे अन्य बाइयों और मुखियों को दिखाया करता था? बाई की प्रशंसा करते हुए वे अभागे की पीठ थपथपाते थे और कहते थे कि आदमी को सही रास्ते पर चलना चाहिये। कब की बात है यह? कल की ही तो। और आज–"ख़ुदा का नाम लेकर चल दो"? लोग क्या कहेंगे? मेइत को वह क्या कहेगा?

कोकिश बाख़्तीगुल के सामने उकड़ूं बैठ गया और अपनी साड जैसी गर्दन फुला कर हंसता हुआ बोला:

"अरे, यह तुम्हें हुआ क्या है? बाई की रोटियां खा-खाकर क्या औरत बन गये हो? धावा बोलनेवाले को तो ऐसा काम ख़ुदा दे। वह तो कब्र से उठ आयेगा इसके लिये!"

मगर बाख़्तीगुल यह सुनकर मुस्कराया नहीं। जारासबाई ने बाख़्तीगुल के लिए और कुमीस डालते हुए कहा:

"जैसा कि तुम और बाकी सभी लोग जानते हैं, पहल माट ने ही की है। न वह ऐसी हरकत करता और न हमारे लिए ऐसा कदम उठाने की नौबत आती। उन्होंने रात को चोरी करके अपने हाथ काले किये हैं और हम ईमानदारी से धावा बोल कर हिसाब बराबर कर रहे हैं! और अब

ये चोरटे चाहे कहीं भी क्यों न जायें, बेशक लाट साहब के पास भी, सभी लोग – क्या कज़ाख क्या रूसी – हमारा ही पक्ष लेंगे... समझ गये न?"

"नहीं बाई... नहीं समझा। सब कुछ उलझा-उलझाया हुआ है मेरे दिमाग में," दर्दभरी और दबी घुटी आवाज़ मे वाख़्तीगुल ने जवाब दिया। "एक बात जानता हूं कि पतझर आई कि आई और इस पतझर में चोर और धावामार दोनों को ही सूली दे दी जायेगी... बहुत दुख-मुसीबतें देखी-जानी है मैंने! इतनी अधिक कि अब और सहने की हिम्मत नहीं रही। मैं तुम्हारी मिन्नत करता हूं कि मुझे नहीं भेजो!"

जारासबाई ने लाल-पीला होते और उसकी बात काटते हुए कहा.

"कब से तुम सूली की चिन्ता करने लगे हो? लानत है तुम पर दूरदर्शी! .. अपना कर्तव्य भूल गये? तुम्हें अपने पूर्वजों की तड़पती आत्माओं का भी ख्याल नहीं रहा? साट ने तुम्हारे बाप को तबाह किया। साल्मेन ने तुम्हें यतीम बनाया। मैं तुम्हें साट और साल्मेन से बदला लेने की ताक़त दे रहा हू। अगर ऐसा मौक़ा हाथ से निकल जाने दोगे, तो मैं तुम्हें बुज़दिल और गद्दार समझूंगा, यह मानूगा कि तुम्हारी बांहों मे दम-खम नही, तुम खर दिमाग और काहिल हो, जिसे मैंने बेकार ही अपने टुकड़ों पर पाला!"

"तुम मुझे क्या सिखा रहे हो, मालिक?" वाख़्तीगुल ने उदासी से कहा। "बेटे के सामने क्या मिसाल पेश करूंगा?"

जारासबाई दबे-दबे हंसा।

"मैं ही हर चीज के लिए जवाबदेह हूं! धरती के मालिक और आसमान के मालिक के सामने भी! मैं ही पेट पालता हूं, मैं ही हुक्म देता हूं। मेरा हुक्म – मेरा ही गुनाह! खुदा पर भरोसा करो और जाओ..."

"बस, काफी बातें हो चुकीं," कोकिश ने कहा। "बाई, तुम यकीन करो कि वह जायेगा।"

जारासबाई धीरे-धीरे अपनी जगह से उठा।

बाल्तीगुल ने झपटकर बाई से पहले उठना चाहा, मगर उसके घुटने जमे-से रह गये, वह हतप्रभ और बुत बना-सा घुटनों के बल ही बैठा रह गया।

६

उसी दिन बाल्तीगुल की रहनुमाई में दसेक जवानों ने जारासबाई, गारसेन और कोकिश के घोड़ों के झुण्डों में से लम्बी-लम्बी दुमों और तेज दौड़नेवाले सब से अच्छे घोड़े छांट लिये। तैयारी को छिपाया नहीं गया, क्योंकि वे न्यायपूर्ण धावा बोलने जा रहे थे। सन्ध्या को जवानों को विदा करने के लिए गांव के सभी छोटे-बड़े लोग जमा हुए।

जवान सलेटी रंग के साधारण चोगे पहने थे। मगर पोशाक थोड़े ही मर्द की खूबसूरती होती है। वह होती है उसकी ताकत, उसके सुघड़ घोड़े में। खूब तगड़े जवान इकट्ठे हो गये। उनके गठे हुए कंधों पर चोगे बिल्कुल कसे हुए थे। देखने से ऐसा लगता था कि घूसा मारकर पत्थर को चूर-चूर कर डालेंगे, साथ ही ये विद्यार्थियों की सरल

बड़े चुस्त, बहुत फुर्तीले थे। धावामार शरारतें और भोंडे मजाक करते थे मानो कोई दिलचस्प, आह्लादपूर्ण खेल खेल रहे हों, गाववालो के सामने अपनी और घोड़ो की नुमाइश कर रहे थे। घोड़े ऐसे थे कि उन पर से नजर ही न हटे! बंधी हुई पूछोवाले घोडे, जिन पर नीचे और चपटे जीन कसे थे, अपने सुडौल सिरो को घमड से अकडाये हुए बेचैनी से पैर बदल रहे थे। ये घुडदौडो मे जीतनेवाले तेज घोड़े थे। शाम की हल्की-हल्की रोशनी मे साफ-सुथरे और मोटे-ताजे घोड़े मखमल की तरह चमक रहे थे। घोड़े एक जगह पर खड़े न रहकर घुडसवारो के नीचे उछल-कूद कर रहे थे और गाव मे ढोल की ढमढमाहट के समान टापों की हल्की और दबी-दबी आवाज गूंज रही थी।

वाख्तीगुल का इन्तजार हो रहा था। वह बड़े खेमे से हल्केदार की शुभकामनायें लेकर निकला, मानो बदला-बदला-सा। वह भी मामूली-से कपडे पहने था। और यह चीज सभी को बहुत रुची। मगर उसके रग-ढंग और चाल-ढाल मे कुछ नई बात थी, पहले अनदेखी-अनजानी। चोगा केवल बायें कधे को ढके था और वह दायी आस्तीन को पेटी में खोसे था ताकि अपने हाथ को आजादी से हिला-डुला सके। वह पेटी में छः गोलियोंवाली पिस्तौल भी खोंसे हुए था। वाख्तीगुल किसी पर गोली तो नही चलायेगा, मगर इस खिलौने से जाहिर हो जाता था कि मुखिया कौन है, कौन सब से पहले चोट करेगा और कौन अपने बराबर सब से तगड़े ... वार झेलेगा।

था। जारासवाई दौडो के समय, स्तेपियों में अनेक कोसों की लम्वी मजिल तय करने के लिए इस से काम लेता था।

चरवाहे ने इज्जत के साथ सहारा देकर सरदार को घोड़े पर चढाना चाहा, मगर वाख़्तीगुल ने लगाम के सिरे को पेटी में खोंसा और रकावो को लगभग छुए विना ही उछलकर जीन पर जा बैठा। घोड़े की पीठ कुछ दव गई और वह एक ओर को कोई पाचेक कदम पीछे हट गया।

"हां, तो चलो," एड़ लगाते हुए बाख़्तीगुल ने आदेश दिया।

घुड़सवार एक दूसरे से सटते हुए बाख़्तीगुल के पीछे-पीछे अपने घोड़े दौडाने लगे। घोड़े दौडाते हुए ही वे जीन के साथ अपने भाले और सोटे ठीक करने लगे। उनमे से कुछेक तो वगल में ऐसे लापरवाही से सोटा दवाये हुए थे मानो लड़ने-भिड़ने नही, सैर-सपाटे को जा रहे हों।

गाव के मर्द, औरते और वच्चे शोर मचाते, हो-हल्ला करते और बढावा देते हुए इनके पीछे-पीछे भागे। स्तेपी में साकार यौवन, जवांमर्दी और बल वढ़ा जा रहा था। जव यह जवांमर्दी अपना रग दिखायेगी तो शैतान को भी कुचल देगी, मसल डालेगी...

शाम के झुटपुटे में हल्के रंग के घोड़ों की आकृतियों की झलक मिलती रही, फिर वे एक काले धब्बे में वदली और फिर दूरी पर गायव हो गईं। मगर लहरों के शोर के समान टापो की क्रम होती हुई आवाज देर तक सुनाई देती रही।

इस तरह यह धावा आरम्भ हुआ जिसे भोले-भाले और मक्कार लोग न्यायपूर्ण कहते थे। इस से वाई के पुरातन

घमड की तुष्टि होगी और ग़रीबों की आजादी की सदियों पुरानी लालसा तृप्त होगी। ग़रीब पिटेंगे और बाइयो को मिलेगें मुफ़्त घोडे। हरेक को वही मिलेगा, जो बाइयों के बाई, सबसे बडे काज़ी यानी ख़ुदा ने उसकी किस्मत में लिख दिया है।

पौ फटने तक बाख़्तीगुल और उसके जाबाजों ने अपना काम पूरा कर लिया। उन्होने साट की दसेक जवान घोड़ियाँ और बड़े अयालोवाला एक बढिया घोडा चुरा लिया। वे पीछा करनेवालो से बड़ी आसानी से बच निकले, यद्यपि उन्हे अपने पीछे गोलिया दगने की आवाजें भी सुनाई दी। वे तीन हल्कों की सीमा पर बीरान और ख़ामोश पहाडों मे सही-सलामत आ छिपे।

रास्ते में, किसी अनजाने गाव मे से उन्होंने एक साल का मेमना भी उठा लिया। बस, कुत्ते ही उनके पीछे भौकते रह गये। पत्थरों पर बेफ़िक्री से आग जलाई गई। बाख़्तीगुल ने मास उबालने का आदेश दिया और ख़ुद नंगी और भुरभुरी चट्टान पर चढ़ गया।

उसके सामने ईंट के रंग की रक्त-रंजित-सी पैंने शिखरो-वाली चट्टान दिखाई दे रही थी। उसके पीछे सूअर के बालो की तरह चीड़ का जंगल दिखाई दे रहा था। चीड़ के बड़े-बड़े और घने वृक्ष ऐसे काले-काले दिख रहे थे मानो झुलसे हुए हो। इनके ऊपर कुछ नीली-नीली और चमकती हुई तथा धुआंरी चादर छाई थी। इसके और ऊपर मानो सूर्य द्वारा रात से छीन ली गई बर्फ की गोल-गोल चोटी चमक रही

थी। यह वहुत ही वढिया सफेद खेमा इन्सान की पहुंच के वाहर था। असीम आकाश मे उडता हुआ उकाव गौरैया-सा प्रतीत हो रहा था।

वाख़्तीगुल ने ऊपर की ओर नजर दौड़ाई—लाल चट्टाने, काले जगल, वर्फ के सफेद खेमे और आकाश मे उड़ते हुए उकाव की ओर देखा। उसका दम घुटने-सा लगा। वह देख रहा था और मन ही मन सोच रहा था: "जहा से भागा, वहा ही आया, वस, यह ही मैंने पाया!"

नीचे, अलाव से हल्का-हल्का लहरियेदार धुआ उठ रहा था, मास की गंध आ रही थी, जवान लोग औरतों की तरह वतिया रहे थे और छोकरों की तरह शरारते कर रहे थे। उनके पैरो के नीचे कच्चे, भुरभुरे और अविश्वसनीय रोडे आवाज़ पैदा कर रहे थे। अपनी सख़्त मूछों को चवाते हुए वाख़्तीगुल ने आंखें सिकोड़ी।

रात के धावे का जोश ठंडा पड़ गया था मानो नशा उतर गया हो। दिल मे कड़वाहट-सी वाकी रह गई थी।

"आह... मेरे लिए अव सव वरावर है..!" वाख़्तीगुल ने ऊंची आवाज मे कहा।

"मेरी नेकनामी हो या वदनामी—मेरे लिए अव सव वरावर है। मेरी किस्मत जारासवाई के हाथों मे है। यह वाई का काम है कि किसी को सजा दे और किसी पर मेहरवानी करे। इतना भी खुदा का शुक्र है कि यह वाई साल्मेन जैसा नही है। जारासवाई नही भूलेगा कि मैंने वफादारी से और मन लगाकर उसकी सेवा की है।"

"हमारे लिए तो यह भी बड़ी बात है, बेटे," बाख़्तीगुल फुसफुसाया। "ऐसा ही सोचेंगे हम तो..." और भुरभुरे रोड़ों पर कदम रखता हुआ वह अलाव की ओर चला गया।

इस तरह से शुरू हुआ यह जवाबी धावा... उस सफल और निर्णायक रात के साथ वंशो और वंश-दलों के बीच ऐसा लड़ाई-झगड़ा शुरू हुआ, जैसा कि पहले कभी नही हुआ था। रात के घुप अंधेरे और दिन के उजाले में, स्तेपियों और पहाड़ों मे ज़ोरदार मार-पीट होने लगी, पीछा करनेवालो की भयानक चीख़-पुकार सुनाई देने लगी, ख़ून बहने लगा और जलन पैदा करनेवाली काली धूल दहकते आकाश को छूने लगी। लड़ाई-झगड़ों और धावों के बाद पुराने समय की भांति सभी चरागाहों और गावों में लुकी-छिपी चोरी भी फैल गई। कुछ ही समय बाद तो ख़ुद ख़ुदा भी यह नही कह सकता था कि कहां धावा बोला गया है, कहां चोरी की गई है, कहां दिन के वक़्त सीना जोरी हुई है और कहां आधी रात को चोरों ने अपनी करनी की है।

ठीक ही कहते हैं कि स्तेपी के ये चुनाव जाड़े के बर्फीले अंधड़ के समान थे। कोई भी यह नहीं कह सकता कि स्तेपी मे जाड़े की यह मुसीबत कब टूट पड़ेगी। और चुनाव होते थे हर तीन साल बाद! ज़ाहिर था कि जारासबाई ने या तो मार्का मारने या फिर पूरी तरह अपने को चौपट कर देने का फ़ैसला कर लिया था।

पहले की भांति रोज़-रोज़ उसके घर में लोगों की भीड़ लगी रहती, वे शोर मचाते और सलाह-मशविरा करते, मेहमान ही मेहमान जमा रहते... बेहिसाब जानवर काटे और मेहमानों को खिलाये जाते, बहुत से फंदो में फांसकर भेंट कर दिये जाते। पानी की तरह पैसा बहाया जाता था। जारासबाई के पास वसन्त में जो रकम थी, उसकी एक-तिहाई उसने एक-दो महीने में ही ख़र्च कर डाली थी। अब वह बाल्तीगुल और उसके जवानों को चैन से नही बैठने देता था। साल्मेन भी कभी ऐसा ही करता था। मगर मक्कार जारासबाई कम से कम इतना तो कहता था कि खर्च पूरा करने के लिए नही, बल्कि बदला लेने की खातिर उन्हे चोरी-चकारी को भेजता है। सचमुच वह सुन्दर ढंग से अपनी बात कहता था।

इसमे भी आश्चर्य की कोई बात नही है कि मक्कार जारासबाई ने एक बड़ी सफलता प्राप्त की—एक ज़ोरदार सहारा प्राप्त कर लिया, साट के लोगों में से एक ताकतवर साथी अपनी ओर फोड़ लिया। जारासबाई ने अप्रत्याशित ही बुर्गेन्स्क हल्क़े के दोसाई वंश के गांववालों से दोस्ती कर ली। यह खाते-पीते लोगों का गाव था। उन्हें कृतघ्न कोजीबाक फूटी आखों नहीं सुहाते थे। इस दोस्ती के लिए जारासबाई को खास और बहुत बड़ा खर्च करना पड़ा।

स्तेपी की राजनीति में घुटे हुए अक़्लमन्द काजी ऐसा कहा करते हैं—"सरकंडे रोकें बहते पानी को और लड़की दोस्ती में बदले गहरी दुश्मनी को।" हां, हां, जवान लड़की

ऐसा कर सकती है... दोसाई कुल के मुखिया की एक जवान और सुन्दर बेटी थी–कालिश। जारासबाई ने उसके पास एक बिचौलिया व्याह तय करने के लिए भेजा।

वाख्तीगुल फौरन भाप गया कि इसमे जारासबाई की क्या चाल छिपी है। यह भी मुमकिन है कि जारासबाई लड़की की ख़ूबसूरती पर लट्टू हो गया हो और अपनी प्यारी बीवी को एक जवान सहायिका लाकर देना चाहता हो। मगर महत्त्वपूर्ण बात तो यह नही थी। असली बात तो यह थी कि जारासबाई ने पचास ऊंट ख़ुद चुनकर लड़की के बाप के पास भेज दिये। यह बहुत बड़ी भेंट थी मानो वह ख़ान की बेटी हो! इसके पहले भी लडकी के मा-बाप को बहुत-से तोहफे भेजे जा चुके थे।

सच है *कि शादी का सम्बन्ध बढ़िया सम्बन्ध होता है।* बड़ा मूल्य और उपहार देकर कायम किया गया रिश्ता कोरी कसमों से कही अधिक मज़बूत होता है। इस तरह दूल्हे और मगेतर के गांव पेट की अन्तडियो की भांति आपस मे सदा के लिए घुल-मिल गये। साट तो केवल दांत पीसकर रह गया। दोसाई वश का गांव उसके रास्ते में बबूल का जंगल-सा बनकर रह गया, जिसे न तो पार किया जा सकता है और जिससे दामन बचाकर निकल जाना भी मुमकिन नही होता।

स्तेपी अपमानित नारी की भाति कराहती थी। धावा बोलनेवाले अपने जोश मे कभी यहां तो कभी यहां टूट पड़ते

और निर्दोष लोग सभी तरह की मुसीबतों-यातनाओं के शिकार होते। ऐसे लोग, जिन्हें न तो साट से कोई मतलब था, न जारासबाई से कोई सरोकार। वे ज़ार-ज़ार आंसू बहाते, ढेरों ढेर गालियां देते और कोसते। जाड़े की भुखमरी ने मानो उनके जानवरों का सफ़ाया कर डाला था!

जारासबाई ने बहुत बड़े पैमाने पर यह सारा काम संगठित किया। चुराये हुए जानवरों को वह अपने और पड़ोस के हल्के में इधर-उधर कर देता, बिल्कुल व्यापारी की तरह। बाल्तीगुल चुराकर लाता, कैंरनबाई उनके दाम उठाता... एक लाता, दूसरा उन्हें चलता कर देता – बिना मोल-भाव के, आधी कीमत पर ही। यही कोशिश होती कि जल्दी से जल्दी और बिना कठिनाई के चुराये माल से पिंड छुड़ा लिया जाये। कंजूस सालमेन कभी ऐसा नहीं कर पाया था। घोड़ों को तो जैसे ज़मीन निगल जाती थी – वे रात को आते और सुबह गायब हो जाते और इस तरह जारासबाई की जेब भारी की भारी बनी रहती।

बाल्तीगुल ने इस सारे किस्से की ओर से आंख मूंद ली। वह तो मानो तेज़ बुख़ार की बेहोशी में, स्तेपी की उस आंधी में रह रहा था, जब दिन के उजाले में भी कुछ भी दिखाई नहीं देता। धावे बोलकर वे जो जानवर भगा लाते थे, वे कहां जाते थे, उसे कुछ पता नहीं होता था। जारासबाई ने इस बात की चिन्ता की कि इस सम्बन्ध में धावामारों का सरदार बाल्तीगुल पूरी तरह से निश्चित रहे। उसने मारसेन,

कैरनबाई और कोकिश को इस बात की बहुत कड़ी हिदायत की :

"जब तुम जागो, तो वह सोया रहे! .. अगर वह कहीं मुसीबत मे पड़ जाये और उसे भारी यातनायें दी जायें तो भी हमारा दूरदर्शी यह न बता पाये कि घोड़ो का क्या हुआ, हमने उन्हे कहा ग़ायब किया।"

आखिर चुनाव हुए। जारासबाई जीत गया—वह चेल्कार का हाकिम बना रह गया। साट पिट गया—उसे नहीं चुना गया। यह सच है कि दोसाई के गांववाले बुर्गेन में अपने उम्मीदवार को सफल नही बना पाये थे, फिर भी कोज़ीबाक को तो मात दे दी गई थी। जारासबाई ने अंधाधुंध जो रकम उड़ाई, वह ख़ूब काम आई। अब उसका मौक़ा आया था हाथ रंगने का, अपने हल्के और प्रदेश में भी सत्ता की लम्बे बालोवाली सुनहरी भेड़ मूडने का। वह तीन साल के लिये हल्केदार और ज़िलेदार हो गया था।

जारासबाई ने बाख़्तीगुल को अपने पास बुलवाया, उसकी बधाई स्वीकार की, बड़ी कृपा दिखाते हुए उसकी पीठ थपथपाई और उसे घर भेज दिया।

"घर जाओ और ख़ूब लम्बी तानकर सोओ। अपनी बीवी और बेटे को ख़ुश करो! अगर चाहो तो पूरे तीन साल तक मौज मना सकते हो, अगले चुनावों तक..."

बाख़्तीगुल ने खुलकर राहत की सास ली। वह चाहता था कि जल्दी से जल्दी मालिक की नज़र से परे चला जाये और मालिक भी यही चाहता था कि वह कही दूर हो जाये।

"तुम्हारी इच्छा ही मेरी इच्छा है, मेरे प्यारे मालिक," चरवाहे ने अदब से कहा।

"अच्छा अब तुम जाओ। आगे देखा जायेगा," सफल हो चुके हल्क़ेदार ने उपेक्षा से कहा।

७

बरखा-कीचड़वाली पतझर आई। वाल्गीगुल ने अपने बेटे को घोड़े पर बिठाया और जाड़े के झोपड़े की ओर चल दिया। वह कभी-कभार मालिक के गाव में आता, उसे सलामी देने, आदर प्रकट करने। एक-दो दिन वहां बिताकर हल्के मन से अपने घर, सुखद पारिवारिक वातावरण में वापिस चला जाता। इन दिनों वह गांव में अजनबी-सा लगता—काम-काज से, दफ़्तर से उसका न कोई वास्ता होता, न वह इस में कोई दिलचस्पी लेता। वह तो अपने में ही मस्त रहता, लोगों की बातचीत में कोई रुचि न प्रकट करता, अफवाहों पर कान न देता। इसलिये उसे कुछ भी मालूम नही था कि उसके इर्दगिर्द की दुनिया मे यानी मालिक के गुट्ट मे क्या हो रहा है। बस एक बात उसे हमेशा याद रहती थी कि कोजीवाक उनके साझे दुश्मन है... यह वह कभी नहीं भूलता था और बाकी किसी चीज की उसे परवाह नही थी।

और जब अचानक एक दिन पसीने के फेन से तर घोड़े पर एक जवान आया और उसने ज़ीन से ही चिल्लाकर —

"तुम्हे जारासबाई ने याद किया है..." तो वाख्तीगुल कुछ विशेष घबराया नही और घोड़े पर सवार हो हरकारे के साथ रवाना हो गया।

गाव में हल्के के सभी मुखिया जमा थे और... कुछ पराये लोग भी। अपने घोडो की पिछाड़ी बांध उन्हें चरने के लिये छोड़कर वे सभी हल्केदार के गिर्द घेरा डालकर बैठ गये थे। वाख्तीगुल ने दूसरो से कुछ हटकर ओराज वंश के लोगों को भी बैठे देखा। यह गाव बुर्गेन्स्क हल्के के पड़ोस में था।

बुर्गेन मे ओराज का कुल, जारासबाई के सम्बन्धियों—दोसाई के कुल से कमजोर था। कोज़ीबाको की तुलना में तो वह और भी अधिक कमजोर था। मगर जब तक ताक़तवर एक-दूसरे का गला घोटते रहे, उसी बीच ओराज़ कुल ने हल्के मे अपने उम्मीदवार को सफल करा लिया। इस तरह चुनावो के बाद हारा हुआ साट बुर्गेन्स्क हल्के के नये हल्केदार को अपने इशारो पर नचाने लगा। यह तो स्पष्ट ही है कि कमज़ोर कुल का हल्केदार खुद अपने पर ही भरोसा नही कर सकता था और इसलिये वह कोज़ीबाको के हाथो में खेलने लगा।

ओराज कुल के लोगों को देखकर वाख्तीगुल ने सोचा—"लगता है कि इनकी शिकायत पर मुझे यहा बुलाया गया है।" और उसका अनुमान ठीक ही था। धावा बोलते समय उसके जवान इनके भी कुछ जानवर भगा लाये थे, क्योंकि ये भी बुर्गेन्स्क हल्के के निवासी थे... मगर एक अन्य बात समझने में वाख्तीगुल से अवश्य गलती हुई। जारासबाई ने उसे सीधा

मुह नही दिया। उसके सलाम का भी मानो अनचाहे, मन मारकर जवाब दिया। सलाम-दुआ के बाद ढंग से हालचाल भी नही पूछा, जैसा कि होना चाहिये था और उसपर ऐसे बरस पड़ा मानो किसी अजनबी से बात कर रहा हो।

"ए, बाख्तीगुल... तुम अपनी हद नही जानते! सीमा से बहुत आगे बढ गये हो। मैंने तुम पर विश्वास किया और दूसरो को भी यकीन दिलाता रहा कि तुम गन्दगी में कभी हाथ नही डालते हो! इधर मैं तो तुम्हारे लिये सब कुछ करता रहा और उधर तुम मेरे ही मुह पर कालिख पोतते रहे। किसलिये मुझे ऐसा बदला दिया है तुमने? कम से कम इतना तो बताओ मुझे..."

जारासबाई ने बाख्तीगुल से ऐसे कभी बातचीत नही की थी। हल्केदार आग-बबूला हो रहा था, लाल-पीला हुआ जा रहा था। बाई ने सच्चे और ईमानदार आदमी के जोश के साथ अपना दामन साफ बचाते हुए अपने नौकर से हकीकत बताने की माग की। बाख्तीगुल यह सुनकर हैरान हो रहा था कि उसका अन्नदाता उसे ही अपराधी ठहरा रहा है।

"मेरा क्या कुसूर है, मेरे मालिक? आप ऐसे विगड़ क्यो रहे हैं! मेरे लिये क्या और शब्द नही थे आपके पास? पहले यह तो बतायें कि मेरा अपराध क्या है, फिर तरस खाये बिना कड़ी से कड़ी सज़ा दीजिये! झूठे आरोप सुनकर मन को बहुत दुख होता है। पहले हकीकत जान लीजिये, पहचान लीजिये..."

"कुछ भी नही जानना मुझे! वैसे ही नज़र आ रहा

है मुझे कि यह तुम्हारा ही काम है... तुम्हारी ही करतूत है... सच-सच कहो : ग्रोराज कुल के गाव से, बुर्गेन्स्क हल्के से तुम दो मुश्की ग्रौर एक बादामी घोड़ा तथा बछेरोंवाली दो घोडिया चुरा लाये थे न? तुम्ही चुरा कर लाये थे... तुम्ही चुकाग्रो ग्रब इनकी कीमत।" हल्केदार ने धमकाते हुए कहा।

बाख़्तीगुल मालिक की ग्रोर देखता हुग्रा चुप रहा। घोडे भगा लाया तो भगा ही लाया... जो सच है, वह तो सच ही रहेगा... बाख़्तीगुल इनकार करना, उसके सामने ही झूठ बोलना नही चाहता था। मगर यह मालिक क्या ढोंग कर रहा है—उसी के हुक्म से तो ग्रोराज कुल के घोड़े भगाये गये थे। इस बात के यहा बहुत से गवाह भी थे। मगर वे भी बाख़्तीगुल की ग्रोर देखते हुए ख़ामोश थे।

क्या मालिक ने नाता तोड़ लिया, ग्रपने सरदार की ग्रोर से मुंह मोड लिया? नही, ऐसा नही हो सकता।

ऐसा तो वह केवल दिखावे के लिये कर रहा है... परायों के सामने. . उनकी ग्राखों मे धूल झोंकने के लिये... बाई ज्यादा ग्रच्छी तरह से यह समझता है कि उसे क्या करना ग्रौर क्या कहना चाहिये। इस समय इससे उलझना, उसके खेल मे खलल नही डालना चाहिये। शायद उसने कोई दूर की बात सोची है, कोई गहरा हिसाब-किताब जोड़ा है।

"तो मैंने न तो पहले ही कभी चालाकी से काम लिया है ग्रौर न ग्रब ही ऐसा करना चाहता हू," दूरदर्शी बाख़्तीगुल ने कहा। "सब कुछ तुम्हारा ही तो है, मालिक, हमारे पेट

भी और जान भी। मैं तुम्हारी बात थोड़े ही काटूंगा! मेरा इन्साफ तुम्हारे हाथ में है और तुम्हारा अल्ला के! घोड़े तो भगाये हैं मैंने। जो मनमाने सो करो ताकि ओराजों का पूरा हिसाब चुकता हो जाये। मुझे और कुछ नहीं कहना।"

सफेद और काली दाढियोंवाले सभी एकबारगी चहक उठे, हिले-डुले, उन्होंने आखें सिकोडी और उंगलिया दिखा-दिखाकर धमकाने लगे। चरवाहे की बात उन्हें पसन्द आई। हुकूमत को हमेशा यही अच्छा लगता है कि उसके सामने सिर झुकाया जाये।

फिर से हल्केदार की समझदारी और न्याय की प्रशंसा सुनाई दी। किसी ने बाख़्तीगुल के बारे में कहा:

"है कंगाल, मगर दिल खान जैसा दिलेर है। मर जायेगा, पर सचाई कहेगा।"

दूसरा बोला:

"जरूरत होने पर आदमी की हत्या भी कर डालेगा, पर मालिक से नहीं छिपायेगा। अगर भगा ही लाया है घोड़े, तो कहता है कि ऐसा किया है..." इस तरह भी हल्केदार की ही प्रशसा की गई थी।

इस समय बाख़्तीगुल को भी ख़ुशी हुई कि मालिक को उसकी बात पसन्द आई है।

फिर भी एक बात उसकी समझ में नहीं आ रही थी। इधर-उधर नजर दौड़ाने पर उसे शिकायत करनेवाले ओराज कुल के लोगों के करीब ही दोसाई कुल के लोग बैठे दिखाई दिये... बाख़्तीगुल को अपनी आखो पर विश्वास

नही हुआ। यह कैसे हो सकता है? गर्मी भर उनके बीच सख़्त दुश्मनी रही और अब ऐसे घुले-मिले नज़र आ रहे हैं मानो नज़दीकी रिश्तेदार हो। ऐसे घुटने से घुटना सटाकर बैठे हैं मानो उनके बीच किसी तरह की कोई दुश्मनी, कोई मतभेद ही न हो।

यहा तो अपने आदमी के खिलाफ़, बाक़्तीगुल के विरुद्ध कार्रवाई हो रही थी। बेशक उसने साफ-साफ अपना कुसूर मान लिया था, किसी तरह की कोई अगर-मगर नही की थी, फिर भी हल्केदार की आवाज धीमी न हुई, उसके चेहरे पर *नर्मी की झलक दिखाई न दी। अब जारासबाई गुस्से से* ऊंची आवाज मे भला-बुरा कहने लगा और आख़िर मे धमकाते हुए बोला :

"अब तुम आगे मुझसे किसी तरह की रियायत की उम्मीद न करना। मैंने तुम्हारी पीठ थपथपायी, तुम्हें अपने कलेजे का टुकड़ा बनाया, तुम्हे अपना माना – आख़िर क्यों? तुम्हारी ईमानदारी के लिये। अगर और गड़बड़ करोगे, सचाई के रास्ते से एक कदम भी और हटोगे तो उसी घड़ी से मेरा तुम्हारा कोई सम्बन्ध नही रहेगा, मैं तुम्हारे लिये बिलकुल अजनबी हो जाऊंगा। बहुत सोच-समझकर कदम उठाना..."

"यह तो अब हद ही हो गई।" बाक़्तीगुल ने सोचा, मगर ख़ामोश रहा।

दूसरे लोग भी चुप रहे। हल्केदार की आवाज, उसके गुस्से, भलाई की बातों और उसकी भारी आवाज के उतार-

चढ़ाव ने मानो उन्हें मन्त्रमुग्ध कर दिया था, उनका मन जीत लिया था, उनका मन मोह लिया था। बहुत ही गजब की आवाज थी उसकी, सचमुच खुदा की बढ़िया देन। सचाई और न्याय के रक्षक की ऐसी ही आवाज होनी भी चाहिये।

बाई ने ओराज़ों में से सबसे बड़े की ओर संकेत करते हुए वाख़्तीगुल से कहा :

"चुराये गये घोड़ों का यह मालिक अब तुम्हारे साथ जायेगा। तुम उसे अपने घर ले जाओ और खुद अपने हाथों से चार बढ़िया घोड़े दो। वे चुराये गये घोड़ों से उन्नीस नहीं होने चाहिये ("मगर वे चुराये हुए घोड़े कहां गये," — वाख़्तीगुल के दिमाग में यह सवाल आया)। इसके अलावा अपने कुसूर की माफी के रूप में एक घोड़ा और एक ऊंट भी देना... यही उचित और न्यायपूर्ण होगा।"

कुछ कहने के लिये वाख़्तीगुल ने मुह खोला, मगर वह हकबकाकर चुप ही रह गया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो किसी ने उसके सिर पर डंडा दे मारा हो। आसपास बैठे लोग ऐसे चुप रहे मानो उन्हें सांप सूंघ गया हो। स्पष्टतः वे भी आश्चर्यचकित थे...

बाई को मालूम है, बहुत अच्छी तरह मालूम है कि वाख़्तीगुल के पास कितने और कैसे जानवर इकट्ठे हो गये हैं। वह सब जानता है और उसने आधे से अधिक दे देने के लिये कहा है... ऊंट देने का भी आदेश दिया है!

नहीं, नहीं, जारासबाई बाद में उससे ज्यादा जानवर लौटा देगा, जितने उसने वाख़्तीगुल से लिये हैं। जरूर ऐसा

ही होगा! मालिक बाद मे उसे बुलायेगा और परायों की अनुपस्थिति में उसे तसल्ली देकर शान्त करेगा। आज्ञाकारी नौकर को उसके जानवर वापिस देगा, उससे कुछ मधुर शब्द कहेगा ताकि न तो बाख़्तीगुल की दौलत मे कोई कमी हो और न मन में ही कोई मैल बाकी रहे। यही उचित और न्यायपूर्ण होगा।

ओराज़ कुल के लोगों और बुजुर्ग सारसेन को अपने साथ ले जाते हुए बाख़्तीगुल ने ऐसे ही सोचा। सारसेन को इस बात की जाच करने के लिये भेजा गया था कि हल्केदार के हुक्म की पूरी तरह तामील की गई या नही।

मगर एक, दो और फिर तीन दिन गुज़र गये। हल्केदार ने बाख़्तीगुल को नही बुलवाया। मालिक को फुरसत ही नही थी। बहुत-से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण काम थे जिन्हे टाला नही जा सकता था। बाई बाख़्तीगुल को भूल गया था। अपने जानी दुश्मन को ख़ुश करने के लिये उसने अपने वफादार नौकर को घड़ी भर में लूट लिया, बुरी तरह उसकी बेइज्जती कर डाली... आन की आन मे उसे रौंद डाला... रौंदे हुए की ओर नजर घुमाकर देखा भी नही। क्यो ऐसा किया है उसने?

बाख़्तीगुल की समझ मे कुछ भी नही आ रहा था। हातशा का चेहरा उतरा हुआ था, आखें सूजी-सूजी थीं। सेइत अपने पिता की ओर अनबूझ, कभी विचारों में डूबी और कभी उदासीन नजरों से देखता। कभी-कभी लड़का अपने अव्यक्त विचारो मे खोया-खोया जरा सा हंस देता।

वाल्तीगुल इसके कारण खीझता और साथ ही डर भी जाता।

तरह-तरह की अटकलें लगाकर परेशान हुआ वाल्तीगुल अपने पडोसियों और पास के गांवो में रहनेवाले दोस्तों के पास अपने दिल का दर्द सुनाने, उनसे सलाह-मशविरा करने और हालात का जायजा लेने के लिये गया। वह यह जानना चाहता था कि आगे उसे क्या करना चाहिये। मगर वे लोग कन्नी काटते-से प्रतीत हुए। किस्से-कहानिया और अफ़वाहें सुन-सुनकर उसका सिर चकराने लगा – जिन्दगी भर नहीं समझ पाऊंगा मैं इन्हे। अपने भाई तेक्तीगुल की मौत के बाद के समान ही अब फिर से उसे लगा कि जैसे वह कारवा से पिछड़ गया है, रेगिस्तान में अकेला रह गया, भटक गया है, कि उसके लिये आशा की कोई किरण बाकी नहीं बची। फिर से पत्थर की निर्दयी दीवार की भांति उसका निष्ठुर भाग्य उसके सामने आ खडा हुआ है। सभी लोग, सारी दुनिया दीवार के उस ओर है। वह एकदम अकेला, कटी हुई उंगली, टूटे हुए बाल के समान है।

गर्मी के दिनों के धावे तो बढिया दावतों के समान थे... पतझर मे उनका नशा उतर गया था। मगर जाहिर है कि नशा उतरा था गरीबों का, मोटी तोंदोंवालों का नहीं। जैसा कि बाप-दादो के समय होता था, वैसे ही अब भी काला सफेद और सफेद काला हो गया था। स्तेपी के बाई इस फन में एक ही उस्ताद थे! अपराधी अकडते और शान से सिर ऊंचा किये हुए घूमते थे और निर्दोषों की गर्दन से

पकड़कर खीचा जा रहा था। बिल्कुल जाना-पहचाना और बहुत पुराना था यह दृश्य!

जैसे ही चुनाव खत्म हुए और हल्कों में धावों का शोर-शराबा कम होने लगा, वैसे ही प्रदेश मे इस सिलसिले में क़दम उठाये जाने लगे। पुलिस के बड़े-बड़े अधिकारियों के लम्बे-लम्बे कान खड़े हुए। इन मामलों की तरफ नगर के बड़े-बड़े दफ्तरों का अपना ही रवैया था: किर्गीज़ियों के बीच (उस ज़माने में कज़ाखों को यही संज्ञा दी जाती थी) पूरी टोलियों की घुड़दौड़ आम हो गई है... लड़ाकू हल्कों ने सिर ऊपर उठाया है। खुदा न करे कि यह बीमारी किर्गीज़ियों से कज्ज़ाकों मे फैल जाये...

चौकीदारों और पुलिसवालों की रिपोर्टों से साफ है कि अवज्ञा फैल गयी है। अफसरों की, ऊपर से लागू किये कानूनों की कोई परवाह नहीं करता।

हल्केदार एक-दूसरे के खिलाफ जो खुशामद भरे शिकायती खत भेजते थे, वे जलती आग में घी का काम करते थे। उनके कागजों में विद्रोह, विद्रोही, उकसानेवाले और चोर जैसे ढेरों ढेर भयानक शब्द भरे रहते... अफ़सरों की भाषा में 'चोर' और 'विद्रोही' एक ही बात थी।

पतझर के एक ठंडे दिन अचानक पुलिस के एक बड़े अफसर के हुक्म की मानो बिजली कड़की और सारा प्रदेश कांप उठा। सभी हल्केदारों, सभी क़ाज़ियों को कड़ी पूछ-ताछ और जांच करने तथा डांट-फटकार के लिये शहर में बुलाया गया।

अब तो सारे प्रदेश में हंगामा मच गया। शीशे की दवातों

और संगमरमर के स्याही चूसदानों से सजी हुई मेजों के पास बैठे हुए बड़े-बड़े और छोटे-छोटे अफसरों ने अपना पूरा रंग दिखाया। पुरानी आदत के अनुसार लोगों को डराया गया... चुने हुए हल्केदारों को पदों से हटाने की धमकी दी गई और कुलों तथा पार्टियों के मुखियों को उनके गावों से निकाल देने का डर दिखाया गया। इस शोर-गुल में उन्होंने घूंस ले लेकर अपनी बड़ी-बड़ी जेबें खूब गर्म की।

यह हिदायत करते हुए उन्हें छोड़ दिया जाता :

"श्रीमान् यार्ड, तुम्हारे इलाके में शान्ति होनी चाहिये!"

डांट-डपट का मोटी तोंदोंवालों पर अच्छा असर हुआ। घोड़ियों का दूध पी पीकर उन्हें जो नशा चढ़ा था, वह घड़ी भर में उतर गया। यहां तक कि प्लेग की तरह साजिशों की लाइलाज बीमारी भी मानो कम होने लगी।

विरोधी दलों के मुखिया खूब हो-हल्ला करते हुए नगर की ओर ऐसे गये मानो कोई पर्व मनाने जा रहे हों। वहां उन्होंने जैसे होड़ करते हुए बढ़-चढ़कर दावतें करनी शुरू की... भूरे और दूसरे रंगों के, पदमवाले और बिना पदमों के घोड़े काटे गये, ऊंची-ऊंची आवाज में कुरान पढ़ा गया और इन अमीरजादों ने अपने नर्म-नर्म और सफ़ेद-सफ़ेद हाथ आसमान की ओर उठाकर लड़ाई-झगड़ों को खत्म करने और वांछित सुलह कर लेने का आह्वान किया। अन्त में बलि के रक्त और बहुत-से गवाहों के सामने कसमें खाई गई कि अब सदा के लिये वे जनता में लड़ाई-झगड़े और चोरी-चकारी का

अन्त कर देंगे, उन्होंने बडी मक्कारी से यह ढोंग किया कि न तो हम यह जानते ही हैं कि किसने चोरी शुरू की और न हमें किसी पर सन्देह ही है।

दूसरों के उदाहरण का अनुकरण करते हुए जारासबाई ने भी अन्य लोगों के सामने साट से सुलह कर ली।

सुलह बहुत आसानी से हुई। पकी दाढ़ियोंवाले इन दरिन्दों, झूठों के इन सरदारों ने इशारों से ही सब कुछ समझ लिया और मन ही मन पहले मे ही यह तय कर लिया कि वे किसे दोषी ठहरायेंगे और पुलिस को खुश करने के लिये किसे मुसीबत का शिकार बनायेंगे, यद्यपि खुले तौर पर किसी का नाम नही लिया गया था।

बहुत अर्से से ही यह सिलसिला चला आ रहा था— प्रदेश मे जब तक घूस नही देगा, चैन नहीं मिलेगा। मगर इस बार खास किस्म की घूस मागी जा रही थी—लोगों की घूस... अपराधियो की माग की जा रही थी...

शहर मे जारासबाई का एक अपना आदमी था—दुभाषिया तोकपायेव। जारासबाई उससे अपने दिल की बात कहता था, उससे कुछ भी नहीं छिपाता था। तोकपायेव उसके लिये रक्षक-देवता, अथवा यदि अधिक सही तौर पर कहा जाये तो मुख़बिर-फरिश्ता बन गया था। वह उन फरिश्तों में से था जो जाड़े और गर्मी में लगातार चढावे और रुपये-पैसे पाते रहते है। मगर में रहनेवाले इसी आसमानी फरिश्ते ने कुछ समय पहले साट को जेल भिजवाने मे जारासबाई की मदद की, जिस के लिये उसने ठीक समय और उचित

स्थान पर उचित रकम देकर उचित कागजात पर हस्ताक्षर करवाये थे।

चुनावो के बाद दुभापिये ने अपने शहर के मकान मे जारासबाई की दावत की और एकान्त में खुसुर-फुसुर करते हुए चेतावनी दी:

"बडी सरकार बहुत नाराज है... ढेरो शिकायते आई है कि तुम अपने पास चोरो को शरण दिये हुए हो और उनमे घोडों के जाने-माने चोर भी शामिल है।"

तोकपायेव ने सलाह दी कि जारासबाई आख में खटकनेवालों मे से किसी एक को बड़ी सरकार को सौंप दे...

"मुख्य बात तो यह है कि उसे खुद अपनी बाई की अदालत मे ही दण्ड देकर और फदे मे कसकर अपने ही लोगो के पहरे मे नगर लाया जाये। असली चीज तो इसका पूरा नाटक पेश करना है।"

यह सब कुछ बाख़्तीगुल नही जानता था।

चेल्कार्स्क हल्के के काज़ियों की बैठक नज़दीक आती जा रही थी। जब झगड़ो और लड़ाइयों के बहुत-से कागज जमा हो जाते तो हल्केदार तीन-चार महीनों मे एकबार ऐसी बैठक बुला लेता था।

प्रायः यह होता था कि काजी मामलो पर विचार और बहस-मुबाहिसा करते, मगर हल्केदार उनकी पीठ पीछे यह कहता रहता:

"न तो मैंने फैसला किया है और न ही सज़ा दी है-बुजुर्गों और बुद्धिमानों ने ही ऐसा किया है..."

मगर अगली बैठक मे काज़ी ऋणो के सामान्य झगड़ो को तो छूनेवाले भी नही थे। वे तो किसी ख़ास महत्त्वपूर्ण मामले पर विचार करनेवाले थे, जिसके लिये विशेष समझ-बूझ की जरूरत थी। इसीलिये बहुत बेकरारी और ख़ास दिलचस्पी से बैठक का इन्तज़ार किया जा रहा था। वे इन्तज़ार कर रहे थे और हल्क़ेदार को जल्दी करने के लिये कह रहे थे। बाल्तीगुल को इस बात की भी जानकारी नही थी।

मुसीबत के मारे की मुसीबतें ऐसे ही बढती जाती है जैसे फटे-पुराने कुरते मे पैबन्द। इसी समय जब बाल्तीगुल को कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था और वह पडोसियों से सलाह-मशविरा करता फिर रहा था, कोजीबाको के कई घोड़े ग़ायब हो गये। चोर और चोरी के माल का कही कोई निशान नही मिला। कोजीबाको ने झटपट बाल्तीगुल को चोर ठहरा दिया। अगर कोई सुराग नही मिला तो इसका मतलब है कि घोड़े उसी ने चुराये हैं। ऐसे ही तो यह मसल मशहूर नहीं है कि बद भला, बदनाम बुरा।

चुराये गये घोड़ों की खोज करने के लिये दो आदमी आये। वे बाल्तीगुल के घर मे घुस गये और एक साल पहले की तरह ही सब जगह और हर कोने मे ताक-झाक करने लगे। बाल्तीगुल को शुरू मे तो इस बात की हैरानी हुई कि ये ओहदे पराये हल्के मे अपने हल्क़े की तरह ही मनमानी कर रहे हैं। मन है कि उनसे और आशा ही क्या की जा सकती थी? कोजीबाक जो ठहरे! फिर भी बाल्तीगुल ने उन्हें

शराफत से विदा करने की कोशिश की। मगर वे नही गये। मालिकों की तरह ही चीख़ते हुए बोले

"क्या पिछले साल की सी दुर्गति कराना चाहते हो? फिर से हमारे कोड़ों का मजा चखना चाहते हो क्या?"

वाल्तीगुल आग-बबूला हो उठा। उसने अपने घुटनो तक के बूटो मे से काली मूठवाली पतली और लम्बी-सी छुरी निकाली :

"चीर डालूगा तुम्हें... कमीने कुत्तो!"

बहुत गन्दी जबान वाले ये दोनों गुडे तो दिखावे के ही तीस मार खा निकले। छुरी देखते ही वे दोनों गालियां देते हुए अपने घोडों की ओर लपके। बहुत देर तक वे बहुत ही गदी गालिया बकते हुए वाल्तीगुल के घर के सामने चक्कर काटते रहे। इन गीदडों को मालूम था कि बबर उनका पीछा नही करेगा।

उसी दिन हातशा ने मांस का एक बड़ा-सा टुकड़ा उबाल्-कर बहुत बढ़िया पकवान तैयार किया और इसे लेकर हल्केदार के गाव मे जारासबाई के घर गई। मगर बाई की बीवी कदीशा ने तो सुरमा लगी अपनी भौंहे चढ़ा ली और मांस की ओर देखा तक भी नही। हातशा उसे सम्मानपूर्वक मौसी-मौसी कहती रही, मगर वह जवाब में केवल अपने होंठो को टेढ़ा और घमंड से फू-फा करती तथा खीसे निपोरती रही। मालकिन की देखादेखी जानवरों की देखभाल करनेवाली और घर की नौकरानियां भी हातशा का मज़ाक उड़ाने लगी, उसके हर शब्द के जवाब मे ताने-बोलियां और खुले तौर पर फब्तियां कसने लगी।

हातशा ने ठीक मौक़ा देखकर जारासबाई के सामने उसकी बीवी से अपने बेटे सेइत के बारे में कहा :

"उस बुद्धू को मुल्ला के पास पढ़ना बहुत पसन्द आया है। चैन नहीं लेने देता। अपनी ही रट लगाये रहता है– 'जाड़ा तो आया कि आया, कब से भेजोगे मुझे पढ़ने के लिए? .. मैं नहीं जानती कि उसे क्या जवाब दूं।"

मगर हल्केदार और उसकी बीवी ने तो उसकी ओर देखा तक नहीं, मुंह से एक फूटा शब्द भी नहीं निकाला मानो हातशा तो वहां थी ही नहीं। बहुत ही क्षुब्ध और डरी हुई वह अपने खस्ताहाल घर में लौट आई।

तब वाख्तीगुल बाई के पास गया और जल्द ही गुम-सुम और उदास-उदास वापिस आ गया। हल्केदार के गांव में लोग माथे पर बल डालकर उसकी ओर देखते, सीधे मुंह बात तक न करते। उसकी ओर उंगलियां उठाते और उसकी मुसीबतों का मज़ा लेते हुए पीठ पीछे जहरीले तीर छोड़ते–

"घमंडी कहीं का . . ." बाई के हाल के चहेते और सरदार ने, जो अब सभी से ठुकराया-बिसराया जा चुका था, इसी तरह अलग-थलग रहकर दस दिन और गुज़ार दिये। वह घर से बाहर नहीं निकला, किसी को उसने अपनी सूरत नहीं दिखाई और व्यर्थ ही यह अनुमान लगाता रहा कि क्या बात हो गई है और क्या होनेवाली है। वह तो मानो जेल में बन्द था और केवल किसी अजनबी राहगीर की ज़बानी ही उसे यह पता लगा कि चेल्कार में क़ाज़ियों की बैठक शुरू हुए तीन दिन गुज़र चुके हैं।

लोगों का कहना था कि बहुत ही क्रूर, बहुत ही गुस्सैल क़ाज़ी वहा इकट्ठे हुए हैं। वे बड़ी सख्ती से जाच-पड़ताल करते हैं और बहुत ही कड़ी सजा देते हैं, न कोई दया, न रहम करते है। ऐसा भी सुनने में आया मानो उन्होंने एक काली सूची तैयार की है, जिसमें लगभग बीस आदमी हैं जिन पर चोरी का इल्जाम लगाया गया है। कौन लोग हैं इस सूची मे, यह किसी को मालूम नही था। पर इतना बिल्कुल स्पष्ट था कि ये बदकिस्मत जेल जाने से नही बच सकेंगे।

ख़ुदा जाने कहा से, मगर हातशा ने उनमे से एक का नाम मालूम कर लिया। यह था—जादीगेर। यह सुनकर बाख़्तीगुल डर से बुरी तरह काप उठा। पूरे साल में उसने ऐसा डर एक बार भी महसूस नही किया था। जवान जादीगेर गर्मियों के धावों के वक्त बाख़्तीगुल का दायां बाजू रहा था।

"ये बदमाश जानते हैं कि किसे निशाना बनाया जाये, किसे मुसीबत मे फसाया जाये," बाख़्तीगुल ने अपने-आप से कहा: "मेरी बारी आनेवाली है।"

इन दिनों वह एक बार भी नही मुस्कराया, उसने मुह मे एक कौर भी नही डाला, आंख तक नहीं झपकायी और किसी से एक बात तक नही की। फ़र की टोपी को आंखों तक खीचकर वह फटी-पुरानी चटाई पर चित लेटा रहा, हिला-डुला भी नही मानो उसे जकड़ दिया गया हो। उसे प्रतीत होता मानो उसकी ज्योतिहीन आखों के सामने दुनिया उल्टी होकर रह गई है।

वह लेटा हुआ अपने बुलावे का इन्तज़ार करता रहा।

और उसे बुलाया गया। हरकारे का सम्मानपूर्ण थैला लिये हुए एक आदमी आया और उसे अपने साथ लिवा ले गया।

बहुत बडे, ऊंचे और साफ-सुथरे खेमे में कोमल परों वाले गद्दों और रोयेंवाले तकियों पर मोटी तोंदोंवाले लेटे हुए थे। वे दिन-रात मांस खाते रहते थे—खा खाकर उनके दिमागों पर भी चर्बी चढ़ गई थी। वे खाते थे और मुकदमों की कार्रवाई चलाते थे... वे उन गांवों के कुत्तों के समान लगते थे, जहा महामारी से ढोर मर गये हैं। खूनी आखें, गर्दन के उभरे बाल और टांगों के बीच दुमे दबाये हुए पागल कुत्तो के समान जो मरे ढोरो को चट करने के बाद इन्सानों पर झपटते हैं।

बाह्तीगुल मुश्किल से ही ऐसे कदम रखता हुआ मानो लम्बी बीमारी भोग कर उठा हो, धीरे-धीरे अन्दर आया और सलाम करके दरवाज़े के पास खड़ा हो गया। किसी ने भी उसकी ओर सहानुभूति से नही देखा, न तो कठोर अध्यक्ष ने और न ही स्नेहपूर्ण सारसेन ने। काज़ियों ने दूसरी ओर मुह फेर लिया मानो उसका सलाम लेते हुए डरते हों। टुकड़खोरों ने, उल्टे, अपनी मछली जैसी अभिव्यक्तिहीन आंखें उसके चेहरे पर गड़ाकर उसे घूर-घूर कर देखा और उनके चेहरों का तो इसलिए रंग उड़ गया कि वह उन्हें सलाम कर रहा था। वहां एक भी तो ऐसा आदमी नहीं था जो उसके स्वास्थ्य, परिवार और घर-बार का हालचाल पूछता।

"अब तो समझ रहा है न कि ऊंट किस करवट बैठने जा रहा है?" वाख्तीगुल ने जरा हसकर अपने-आप से पूछा। अचानक उसने राहत की सांस ली। ऐसी राहत पाने की तो उसने ख़ुद भी उम्मीद न की थी।

उसे लगा मानो उसकी आत्मा मे उजाला हो गया, दिमाग में हर चीज सुलझ गई है। यह तो जानी-पहचानी और पुरानी चाल है। बात इतनी ही है कि दुनिया मे इन्साफ़ नहीं है और कभी नहीं होगा। बस, ऐसा ही है।

"मैं बिल्कुल बेकुसूर हू, कोई अपराध नही किया मैंने," वाख्तीगुल ने अपने-आप से कहा। "अगर मैं चोर हूं तो तुम चोरों के भी बाप हो। तुम न तो मुझे अपराधी कह सकते हो, न मेरा निर्णय कर सकते हो। ख़ुदा मेरा गवाह है!"

इधर वाख्तीगुल ख़ुद अपने से बहस कर रहा था, अपनी सफाई पेश कर रहा था, उधर काज़ियों ने मुकदमे की कार्रवाई शुरू कर दी।

जाहिर है कि कोजीवाक मुद्दई थे और काजी कोजीवाकों के मुखिया की बाते बहुत ध्यान से सुन रहे थे। उसकी बातें सुनने के बाद उन्होंने खास कर अच्छी तरह गला साफ किया, गम्भीर हुए और पूरे जोर-शोर से सभी एक साथ अभियोगी पर झपट पड़े।

पर उन्होंने चाहे कितना ही हंगामा किया, वाख्तीगुल ने हार नहीं मानी। पहले की भांति अब भी उसने हकीकत से इनकार नही किया। उसने एक दूसरे और फिर तीसरे वाई को बेधड़क जवाब दिये:

"मैंने न तो पहले कभी सचाई को छिपाया है और न अब ही छिपाऊंगा। कोजीबाकों के जानवर मैंने चुराये हैं।"

"किसलिए चुराये? क्यों चुराये?"

"क्योंकि आपके दल मे था।"

चेल्कार के काज़ी कुछ देर के लिए चुप हो गये। उन्होंने नाक-भौंह सिकोड़ी और चुपचाप एक-दूसरे की ओर देखा। नाटे, मोटे और सूग्रों जैसी सीधी मूछोंवाले कोज़ीबाक काज़ी ने स्थिति को सम्भाला।

"ओह, यह तुम्हारा दल... किस्मत का मारा तुम्हारा यह दल!" ख़ूब ज़ोर से ठहाका लगाया उसने। "किसकी इसने सेवा नही की, इस बेचारे दल ने? लगता है कि तुम्हें भी उसने गधे की तरह अपनी पीठ पेश कर दी, हाय, हाय!"

चेल्कारियों मे ज़रा हलचल हुई, उन्होंने दात निपोरे और अपने चिकने होंठों पर ज़बान फेरी।

"यह जानना दिलचस्प होगा कि सॅाट या ग्रोराज कुल के दल के लोगों के साथ तुम्हारा क्या हिसाब-किताब है? हो सकता है कि तुमने किसी जन-सभा मे उनसे झगड़ा किया था, चेल्कारियो की सत्ता की रक्षा के लिए मोर्चा लिया था, जनता की जरूरतों के लिए सीना तानकर खड़े हो गये थे? लगता है कि मैं भूल गया हूं कि यह कब हुआ था... हमें ज़रा याद करा दो, इतनी मेहरबानी करो!"

काज़ी ज़ोर से हंस दिये और पेट पकड़कर उन्होंने तकियों के साथ टेक लगा ली।

"तुम जरा यह भी याद दिला दो कि किस हिसाब के वदले मे तुमने कोज़ीवाकों के उक्त पाच घोड़े लिये? हा, तो प्यारे, याद दिलाना तो उक्त पाच घोडो की! .."

वाख़्तीगुल ने हैरान होते हुए उदासी से इधर-उधर देखा। किस बात पर वे हस रहे हैं? शुरू मे तो उसने सचमुच यह याद करने की कोशिश की कि वे किन पांच घोड़ों की चर्चा कर रहे हैं। मगर कुछ देर बाद खुश होते हुए काज़ियों की ओर देखकर उसने खुद भी खीसें निपोर दी। वे तो हमेशा खुश रहते हैं, वे तो सभी खुश रहते हैं – अपने भी, पराये भी, मुद्दई भी और निर्णायक भी।

"मैंने पांच ही नही, बहुत से और बहुत बार घोड़े चुराये हैं..." वाख़्तीगुल ने भारी आवाज मे कहा। "आप लोगो से यह थोड़े ही छिपा रह सकता है कि मैंने कितने घोड़े लिये हैं। निश्चय ही यह सही है कि अपनी परवाह न करते हुए मैंने अपने हल्क़े के लिए सब कुछ किया – तुम लोगों के लिए लड़ा-भिडा, हर तरह की मुसीबतों का सामना किया। मालिक के लिए, उसकी भलाई के लिए अपने सिर तक की परवाह नही की..."

काज़ियों में एकबारगी हलचल मच गई, वे उसकी बात मे बाधा डालते हुए शोर मचाने लगे।

"ए यह तुम क्या बकवास कर रहे हो, बात को कहां से कहा लिये जा रहे हो!"

"लड़ा... भि... ड़ा! . ज़रा दिलेरी तो देखो इसकी... कहां से सीखे हो ऐसे शब्द?"

"लड़ना और चुराना, उसके लिए दोनों का एक ही अर्थ है।"

"खुद ही तो माना है इसने कि पांच नहीं, बहुत घोड़े चुराये हैं..."

"मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा," बाल्तीगुल ने अपने गुस्से पर क़ाबू पाते हुए धीरे से कहा। "सम्मानित लोगो, आप क्या चाहते हैं मुझ से?"

"तुम्हारे अपराधों के लिए तुम्हारे ख़िलाफ़ कार्रवाई कर रहे हैं," सबसे बुज़ुर्ग क़ाज़ी ने बड़े घमंड के साथ जवाब दिया। "हम तुम्हें अनाप-शनाप बकने से मना करते हैं! समझे!" अपने कहे शब्दों से खुश होते हुए उसने अपनी सफ़ेद दाढ़ी पर शान से हाथ फेरा। "छोटे मुंह बड़ी बातें न करो, जो कुछ तुम्हारी शक्ति और तुम जैसे चरवाहे की अक़्ल से दूर की बात है, उसे कहने की तुम्हें हिम्मत नहीं करनी चाहिए! जिन्हें ऐसी बातों का फ़ैसला करना चाहिए, जिन्हें खुदा ने इसके लिए भेजा है, वे अपने रोशन दिमागों का इस्तेमाल कर खुद ही अपने मामले सुलझा लेंगे। तुम्हें इनसे कुछ लेना-देना नहीं। हमारे हल्के के दल ने बहुत पहले ही इन पांच घोड़ों और बाकी सभी चीज़ों का हिसाब चुकता कर दिया है। मैं कहता हूं—बहुत पहले और पूरी तरह! और अपने हाथ साफ कर उसने कानूनी मुद्दई को सही और सचाई की राह दिखाई है। जब तुम्हें जवाब देने के लिए बुलाया गया है तो तुम अपने अपराधों के लिए जवाब दो!"

"मगर मेरा अपराध ही क्या है?" वाख़्तीगुल ने हताश होते हुए पूछा। "अपने लिए तो मैंने घोड़े चुराये नही और उन्हें चुराकर धनी भी नही हुआ। मैंने तो अपनी इच्छा के विरुद्ध केवल हुक्म की तामील की। शायद यही मेरा क़ुसूर है कि जो हुक्म मिला, मैंने वही किया? बताइये मुझे?.."

"यह भी ख़ू... ब रही! चोरी करने का भला तुम्हें कौन हुक्म दे सकता था?" बेशर्मी से आंखें फाड़कर उसकी ओर देखते हुए एक कोज़ीबाक ने पूछा।

वाख़्तीगुल ने सिर झुका लिया। वह असमंजस में था। इन लोगों की ओर देखते हुए, उनकी बातें सुनते और उनके जवाब देते हुए उसे शर्म आ रही थी।

"तो लग गया ज़बान में ताला? दूसरों के मत्थे कलंक मढ़नेवाले..."

"अच्छा यही हो कि वे ख़ुद ही अपना दोष मान लें," वाख़्तीगुल ने दुखी होते हुए कहा। "उन्हें ढूंढ़ने मे समय नहीं लगेगा। कही दूर भी नही जाना पड़ेगा... ये देखिये, वे सम्मानित स्थानों पर बैठे है," इतना कहकर उसने सारसेन और फिर कोकिश की ओर संकेत किया जो इसी समय अपने हाथों मे बेंत का शानदार कोड़ा लिये हुए ख़ेमे में आया था। "बेशक यह छोटे मुह बडी बात होगी, फिर भी मैं यह देखना चाहूंगा कि वे उन पांच घोड़ो और बाकी सभी चीजों की जिम्मेदारी से अपने को कैसे बचायेंगे... मैं देखना चाहता हूं उनके रोशन दिमाग..."

काज़ियों ने गुस्से से, अपनी खीझ को छिपाते हुए एक-दूसरे की ओर देखा। टुकड़खोर आपस में ईर्ष्या और द्वेष से खुसुर-फुसुर करने लगे। चरवाहा भूखा-नंगा है, मगर सत्ताधारियों से बहुत दिलेरी और समझदारी से उलझ रहा है। यह गुलाम न्याय की मांग करता है। छठी का दूध आ जायेगा!

सारसेन बहुत रोबीली सूरत बनाये चुप्पी साधे रहा। काला और साड की तरह मोटा-ताजा कोकिश अपने कोड़े से खिलवाड़ करता और भुनभुनाता हुआ मुस्कराया।

"यह बात गाठ बांध लो," कोकिश ने कहा। "दल के झगडे एक चीज है और चोरी दूसरी चीज! हम एक चीज के लिए जवाबदेह है और तुम दूसरी चीज के लिए। तुम इन दोनो को गडबडाने की कोशिश नही करो... तुम्हारे किये कुछ नही होगा! ("यह कोकिश कह रहा है!" बाख़्तीगुल ने सोचा)। "काजियो!" कोकिश ने जल्दी से कहा। "अगर आप लोग इसे मौका दे देंगे, तो वह न केवल हमारे बल्कि अन्य दसियो और ख़ुद जारासबाई के मुह पर भी कीचड़ पोत देगा। हल्केदार ने मुझे आप से यही कहने के लिए भेजा है। उसने कहा है "चुनाव का इससे कोई सम्बन्ध नही, आपके सामने चोर है! .. वह चोर है और उसने यह मान भी लिया है! आप चोर के विरुद्ध कार्रवाई करे और सजा दें!"

बाख़्तीगुल ने निराशा से अपने खुरदरे हाथ लटका दिये।

"मैं...चोर? यह हल्केदार के शब्द...हैं?" उसने बालक सुलभ भोलेपन से पूछा। फिर भी उसे इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिला।

उसकी आंखों के सामने चाहे कुछ भी क्यों न हो रहा था, फिर भी वह मन ही मन यह आशा कर रहा था कि आख़िरी घड़ी में हल्केदार का एक शब्द, उसका केवल यह एक वाक्य—"मैं इस बदकिस्मत की जिम्मेदारी लेता हूं"—उसे मुसीबत से बचा देगा। बस, सिर्फ इतना ही तो कहने की जरूरत थी हल्केदार को। इस से ज्यादा कुछ नहीं। चाहे उसके साथ अन्याय किया जाता, फिर भी जिन्दगी भर वह मालिक के ये शब्द न भूल पाता। क़ब्र में भी इन शब्दों को अपने साथ लेकर जाता। "मैं बदकिस्मत की जिम्मेदारी लेता हूं..."

बाख़्तीगुल की खुरदरी उंगलियों ने अनचाहे ही उसके गाल के उस निशान को छू लिया, जो ठप्पे की तरह उभरा हुआ था और साल्मेन के साथ उसकी आख़िरी मुलाकात की यादगार था। आज चरवाहे के दिल पर भी ऐसा ही गहरा घाव हो गया और उसका दिल लहूलुहान होकर रह गया।

उसका एकाकी हृदय अच्छी तरह जानता था कि संगदिली क्या होती है, छल-कपट किसे कहते हैं। बहुत अच्छी तरह जानता था वह...

"अगर हल्केदार ने ही ये शब्द कहे हैं," बाख़्तीगुल ने कहा, "और अगर कोकिश झूठ नहीं बोलता, तो मैं मुर्दे की तरह जबान बन्द कर लेता हूं। आप लोग मालिक हैं—मेरी

ज़िन्दगी का कुछ भी कर सकते हैं,. वह कुत्ते से भी गयी-बीती है। कभी कोई गरीब आदमी था और अब नही रहा—इससे फर्क ही क्या पडता है। मगर आख़िर में इतना जरूर कहना चाहता हूं कि मैंने तो आप लोगो पर विश्वास किया था... पर ख़ैर, ख़ुदा आपका भला करे और मैं इसी के लायक हू..." अपनी वात पूरी किये विना ही वाख़्तीगुल ने सिर झुका लिया, उठा और ख़ेमे से वाहर आ गया।

वह मानो अंधा-सा और अपने होंठ काटता हुआ जा रहा था कि कही कुत्ते की तरह हू-हू करके रो न पड़े। इसी क्षण उसे हल्केदार दिखाई पड़ा। जारासवाई के साथ बढ़िया लवादे पहने मोटी तोंदोंवाले अन्य चार लोग थे। वे वड़ी शान के साथ वातचीत करते और धीमी चाल से चलते हुए उसके सामने से गुजर गये। जारासवाई ने वाख़्तीगुल का सलाम भी न लिया। नज़र उठाकर भी उसकी ओर न देखा! यह था हद दर्जे का कमीनापन... यह थी वेहयाई!..

जारासवाई की पीठ को देखते हुए वाख़्तीगुल ने आज पहली वार दांत पीसे।

अर्दली भागा आया और उसने वाख़्तीगुल से खेमे में चलकर अपनी सज़ा सुनने के लिए कहा। वाख़्तीगुल उसके पीछे-पीछे हो लिया।

काजियों ने इन्साफ के नाम पर चुराये गये पांच घोड़ों के वदले में पाच घोड़े देने और चोरी के लिए तीन साल की जेल की सजा दी।

८

दो हृष्ट-पुष्ट जवान मुजरिम को वाहर लाये।

स्तेपी में कोई जेलखाना नही था और लोगो को ताले में बन्द रखने का चलन भी नही था। इसी लिए मुजरिम को शहर भेजने के पहले बेड़िया पहना दी जाती थी, जिनके कड़ों में बडा-सा ताला लगा दिया जाता था। इस तरह उसके भाग जाने का कोई डर नहीं रहता था।

शुरू में तो वाख्तीगुल के होश-हवास गुम हो गये। वह यह तक न समझ पाया कि उसे कहा ले जाया जा रहा है। वह मानो ऊंघते हुए इन जवानो के बारे मे सोच रहा था— कितने कमज़ोर है ये, कैसे मरे-मरे से...

"यहां रुक जाओ," एक जवान ने कहा और दूसरा जाकर जगलगी बेड़िया ले आया। वह वाख्तीगुल के पैरों की ओर देखते हुए बेड़ियों को अपने हाथों मे इधर-उधर घुमाने लगा।

तब वाख्तीगुल ने उस जवान को उपेक्षा से ऐसा धक्का दिया कि वह मुश्किल से ही गिरते-गिरते बचा। बेड़ियां नीचे गिरकर मानो कराह उठी। दूसरा जवान बकरे की सी फुर्ती से उछलकर दूसरी ओर को हट गया।

वाख्तीगुल अपने घोड़े के पास गया, उछलकर उस पर सवार हुआ और धीरे-धीरे उसे ख़ेमों के बीच से दौड़ाता हुआ मन ही मन बोला: "लो, मेरा आख़िरी सलाम..."

जवान निहत्थे थे। उन्हें इस बात के लिए दोष नही दिया जा सकता था कि उन्होंने तभी शोर मचाया जब विख्यात धावामार अपने घोड़े पर जा चढ़ा था।

"ए, ए! किधर जा रह हो! रोको! पकड़ो!"

स्तेपी मे कज़ाख को पकडना तो हवा को पकडने के बराबर होता है। जवान जब तक चिल्लाते रहे, इसी बीच भगोड़ा उस पहाड़ी को पार कर गया जिस के पास गाव बसा हुआ था, खड़े किनारोंवाली घाटी में काफ़ी दूर जा पहुंचा और पहाडियो के बीच गायब हो गया। पीछा करनेवालों को इस बात के लिए भी दोषी नही ठहराया जा सकता कि वे उसका कुछ पता न लगा सके। इन्सान कुत्ते तो होते नहीं... हल्केदार व्यर्थ ही आग-बबूला होता रहा, काज़ी बेकार ही गालियां बकते और उन जवानो को लापरवाही के लिए पुलिस को सौंप देने की धमकी देते रहे जिन्होंने मुजरिम को भाग जाने दिया था। बहुत क़ीमती शिकार निकल भागा था।

वह अपनी इच्छा के विरुद्ध उस जीवन की ओर चला गया था जिससे हमेशा बचता रहा था और जहां से लौटना सम्भव नही था।

बाख़्तीगुल कही भी रुके बिना सरपट घोडा दौड़ाता हुआ घर पहुंचा। हातशा शब्दो के बिना ही समझ गई कि क्या मामला है। उसने न आसू बहाये, न रोयी-सिसकी और चुपचाप उसके गर्म कपड़े जुटाने लगी।

बाख़्तीगुल ने झटपट दूसरे घोड़े पर ज़ीन कसा—तेज़ चाल-वाले मुश्की घोड़े पर। इस घडी से यह घोड़ा ही उसका एकमात्र दोस्त रहेगा। उसने छर्रों से भरी हुई बहुत ही मामूली और पुरानी बन्दूक पीठ पर बांध ली और पेटी मे

वह पिस्तौल भी खोंस ली, जो वह गर्मी में भी अपने साथ रखता था। अब वह उसके लिए खिलौना नहीं थी।

बाख़्तीगुल नजदीक की काली चट्टानों के बीच चला गया। वहां उसने अपनी आखिरी भेड़ काटी और उसका मांस जैसे-तैसे अलग किया। आधा मास उसने परिवार के लिए छोड़ दिया और आधे को ख़ूब नमक लगाकर आंतों की ऊपरी झिल्ली में डाल लिया। झुटपुटा होने पर हातशा उसके लिए पिसा हुआ बाजरा ले आई और बाख़्तीगुल ने उसे आधी भेड़ दे दी। अपने साथ उसने एक अन्य मोटा-ताजा कत्थई घोड़ा भी ले लिया।

विदा के क्षण तो इने-गिने ही रहे। अपने परिवार को ख़ुदा के हवाले कर और पत्नी से यह कहे बिना ही कि वह कब लौटेगा, बाख़्तीगुल रात के अन्धेरे में खो गया।

हातशा तब भी नहीं रोई। ख़ुश्क हुए होंठों से वह केवल इतना ही बुदबुदाई: "मुंह मे राम राम और बगल मे छुरी रखनेवाले मक्कार जारासबाई! .. ख़ुदा करे कि तेरी बीवी भी तुझे वहा भेजे, जहां मैं अपने घरवाले को भेज रही हूं।.. ख़ुदा करे कि तेरे बच्चों के साथ भी ऐसी ही बीते जैसी मेरों के साथ बीत रही है..." इतना कहकर उसने ताराहीन आकाश की ओर इस विश्वास के साथ देखा कि कमीने को उसका शाप लगेगा, कि उसे उसकी हाय ले डूबेगी।

इसी रात भगोड़े के घर में हल्केदार के भेजे हुए ल आ घुसे, किन्तु वे हातशा से कुछ भी मालूम न कर

"सुबह आप लोगों के पास गया था," उसने बनावटी मुस्कान लाते हुए कहा। "अब यह क्या क़िस्सा हो गया है?" मगर उसकी आंखों में गुस्सा और गर्व झांक रहा था।

दो हफ्ते बीत गये। जारासबाई ने ठीक तरह से खोज कराई, यों कहिये कि चिराग़ लेकर भगोड़े को खोजा जाता रहा।

दसियों घुड़सवार दिन-रात घोड़े पर ही सवार घूमते रहे। उन्होंने उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम की ओर सभी पहाड़ छान मारे। बुर्गेन और चेल्कार में सभी जानते थे कि बाख़्तीगुल को ढूंढना आसान नहीं है, कि वह आसानी से हाथ नहीं आयेगा। इसलिए जारासबाई ने उसे भूखों मारकर पकड़ने का फ़ैसला किया। हल्केदार के लोग बारी-बारी से और घोड़े बदल-बदल कर पहाड़ों और घाटियों, गावों और जाड़े के झोपड़ों में उसे खोजते रहते, सभी जगह घात लगाते और पहरेदार खड़े करते, ताकि भगोड़े को चैन न मिले, उसका घोड़ा थक-हार जाये, ख़ुद उसकी हिम्मत जवाब दे जाये और इस तरह उसे अशक्त और आतंकित कर पकड़ लिया जाये। पहाड़ों के एक-एक पत्थर, एक-एक दरार को जाननेवाले मशहूर शिकारी, जाने-माने चोर, जो हाथ को हाथ सुझाई न देनेवाले अन्धेरे में भी रास्ता खोज लेते हैं और डरपोक भेड़ों के पास से भी दबे पाव निकल जाते है, उसकी तलाश कर रहे थे।

बाख़्तीगुल उनसे ऐसे ही बच निकलता, जैसे अंधेरे मे धुआ। मगर उसे बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता।

जेल एक गूगे और अंधे तथा वडे मुहवाले राक्षस की तरह उसके सामने उभरती। उसे लगता मानो वह राक्षस एक भूत की तरह हर घड़ी उसका पीछा कर रहा है। बाक़्तीगुल उसकी ओर देखता हुआ प्रार्थना करने लगता :

"हे भगवान, मेरी रक्षा करो... मुझे शक्ति दो!"

दुश्मन उसका डटकर और लगातार पीछा कर रहा था, ठीक वैसे ही जैसे एक लोक-कथा मे चुड़ैल बाबा-यागा एक कूवड़ और तेज़ चालवाले ऊंट पर सवार होकर दिलेर शिकारी कुलामेर्गेन का पीछा करती है। भगोड़े को कभी-कभी यह सपना आता कि दावानल उसके पीछे-पीछे एक दीवार की तरह वढ़ता आ रहा है या वाढ़ की बैंगनी-सी जीभ उसकी ओर लपक रही है। तव वह या तो पसीने से तर-ब-तर या फिर झुरझुरी महसूस करता हुआ जागता। कभी-कभी जागते हुए भी उसे ऐसी अनुभूति होती। ऐसे क्षण भी आते, जव वह स्वप्न और जागरण की स्थिति में अन्तर न कर पाता और भूत-प्रेत से अपनी रक्षा करने, उन्हें दूर भगाने के लिए कमीज के अन्दर थूकता।

कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि घोड़ा उसे लगभग बेहोशी की हालत मे पीछा करनेवालों से वचा कर दूर ले जाता। इतना ही ग़नीमत कहिये कि बेहोशी मे भी वह घोड़े से नीचे न गिरता। होश आने पर वह क़िस्मत का शुक्रगुज़ार होता जिसने उसे ऐसा अच्छा घोडा, ऐसा बढ़िया दोस्त दिया था। वह झल्लाकर बुदबुदाता :

"उनके हत्थे नही चढ़ूगा... जीते जी ऐसा नही होने दूगा... जीन पर ही मर जाऊंगा... खुदा को अपनी जान दे दूगा, बाई को नही... खड्ड में गिर कर मर जाना जेल मे सडने से बेहतर है..."

लेकिन घोर निराशा अधिकाधिक उसका गला दबोच लेती। वह फदे मे बुरी तरह कसे हुए घोड़े की तरह गले से खरखराहट की आवाज निकालता। देर-सबेर ये लालची, ये कमीने उसे पकड़ लेगे, उसे बेड़िया पहना देगे। वह मरना नही चाहता था। उसकी नसों, उसके थके-हारे शरीर मे गर्म खून तेजी से दौरा करता रहता। छोटे-से और बुझते हुए अलाव के सामने उकड़ू बैठा हुआ वह चट्टानो की ओर ऐसे ही सिर उठाकर देखता, जैसे पाले की चादनी रात मे भेड़िया करता है और कहता:

"ए जारासबाई, हद से आगे नही बढ़ो..." उसके ये शब्द संवेदनशील प्रतिध्वनि के रूप मे चट्टानों मे गूज उठते।

जारासबाई को इस बात का शक हुआ कि गरीब गावों मे भगोड़े की मदद की जाती है, कि वहा के लोग उसे पनाह देते हैं, खिलाते-पिलाते हैं। उसने सभी जगह यह भयानक खबर पहुंचाने के लिए अपने हरकारे भेज दिये:

"जब तक हमारे बीच भगोड़ा फिरता है, हममे से किसी को चैन नही मिलेगा। किसी भी क्षण नगर से पुलिसवालों का दस्ता आ जायेगा... समझ लो कि तब सभी की शामत आ जायेगी। कानून भंग करनेवाले एक व्यक्ति के कारण दसियों, सैकड़ो निर्दोषों को मुसीबत का सामना करना होगा...

तब बड़े-बूढ़े शिकवा-शिकायत करेंगे, बीवियां और बच्चे टसुए बहायेंगे, पर तब यह सब कुछ बेकार होगा!"

इसके साथ ही जारासबाई ने विश्वसनीय लोगों को प्रभावशाली बुजुर्गों के पास भेजा और यह कहलवाया कि वे हाथ पर हाथ धर कर न बैठे रहें। चालाक जारासबाई ने दिलेरों और डरपोकों, दयालुओं और निष्ठुरों के दिल में दहशत पैदा कर दी। आकाश में बाज और धरती पर शिकारी कुत्ते छोड दिये गये।

एकबारगी वाक़्तीगुल से छिपने की जगह और पेट भरने का गुप्त आसरा छिन गया। एक सप्ताह भी नही बीता कि उसने अपने को ऐसे घिरा हुआ पाया मानो खूनी कुत्तों के घेरे मे भालू। पहाडों तक पर भी भरोसा नही किया जा सकता था। उसके कानों तक यह खबर पहुच गई कि मक्कार जारासबाई ने लोगों में कैसे दहशत पैदा कर दी है। यह आजमाया हुआ तरीका था... अब किसी आदमी पर भरोसा नहीं किया जा सकता—एक दुत्कार कर भगा देगा तो दूसरा खुद कन्नी काट कर भाग जायेगा, तीसरा विश्वासघात करेगा या फिर डर से हत्या कर डालेगा।

बेहद थके-हारे वाक़्तीगुल ने आखिरी बार एक बरसाती रात लोगों के साथ बितायी। एक छोटे-से पहाड़ी गांव में एक खस्ताहाल और अलग-थलग खेमे में उसने पनाह ली। यह खेमा एक बढी हुई चट्टान के नीचे उस जगह पर था, जहां से फेन उगलती हुई तेज रफ़्तार वाली नदी तालगार बाहर निकलती थी।

इस खेमे में पहुंचते ही उसे लगा कि वहा पहलेवाली बात नही है, कुछ गड़बड़ झाला है, उसके साथ पहले जैसा वर्ताव नही किया जा रहा। घर वालों ने उसे देखकर नाक-भौंह सिकोड़ी, उससे ग्राख नहीं मिलाई, मानो उसके साथ साथ घर मे सांप घुस ग्राया हो। रात को देर तक उसे घर वालों की दबी-घुटी ग्रौर चिन्ता भरी खुसुर-फुसुर सुनाई देती रही मानो वे उस खुसुर-फुसुर को भी उससे छिपाना चाहते हों। जब उनकी खुसुर-फुसुर ख़त्म हो गई तो भी उसकी ग्रांख नही लगी। उसने घटे भर के लिए झपकी ली, थकान से दुखती हुई पीठ सीधी की ग्रौर पौ फटने से बहुत पहले ही दबे पांवों बाहर ग्रा गया। घर वालों को उसकी ग्राहट तक न मिली। उसने खड़े-खड़े ही गहरी नीद सो रहे मुश्की घोड़े पर जीन कसा ग्रौर इस बात की ग्रच्छी तरह जाच-पड़ताल कर कि कोई उसे देख तो नही रहा, वहां से चल दिया। वह लज्जित ग्रौर दुखी होता हुग्रा, लेकिन मन मे किसी तरह के रोष के बिना वहा से रवाना हुग्रा। यह भी ख़ुदा का शुक्र है कि उसके रास्ते मे किसी तरह के रोड़े नही ग्रटकाये जा रहे थे।

बुर्गेन में वाख़्तीगुल का एक दोस्त था, एक रूसी देहाती, जिसने जीवन के सभी उतार-चढ़ाव देखे थे। वह बडा ही दिलेर ग्रादमी था। तीन साल पहले धावे के समय ये संयोग से इकट्ठे हो गये थे। वाख़्तीगुल उस समय साल्मेन के यहां काम करता था। उन दोनों के बीच गहरी दोस्ती हो गई। इस देहाती की दिलेरी की तो मिसाल ढूंढ़ना भी कठिन था।

उसने नगर के बड़े अफसरों से मोर्चा लिया। बेशक वह उनका अपना रूसी ही था, फिर भी अफ़सरों ने उसे जेल में डाल दिया। यह देहाती साल भर जेल मे पड़ा रहा। इसी समय वाख़्तीगुल से जितना बन पड़ा, उसने बहुत-से बच्चोंवाले उसके परिवार को अनाज और मांस देकर मदद की। जेल में बुरी तरह सताया हुआ देहाती वापिस आया। पर वह जेल के जीवन की बातें ऐसे हंस हंसकर सुनाता कि वाख़्तीगुल के रोंगटे खड़े हो जाते। काजियों के मुकदमे और बीवी-बच्चों से विदा लेने के बाद वाख़्तीगुल सबसे पहले उसी के पास पहुंचा। उसने किसी तरह की फालतू बातचीत किये बिना जरूरत के वक़्त के लिए जमीन मे दबाया हुआ बारूद और गोलियां निकाल कर उसे दीं।

यह था असली दोस्त। पुलिसवालों से उसे डराना मुमकिन नहीं। मगर वह बहुत दूर, खुली स्तेपी में और घनी आबादीवाली जगह पर रहता था।

वाख़्तीगुल के लिए सिर छिपाने की एक और जगह भी थी। यह जगह थी तालगार के निचले भाग में, लाल चट्टानों के पास, गरीब काटुबाई के घर में। दूसरों की तुलना में वाख़्तीगुल इस घर में कहीं अक्सर आता था और यहां उसे हमेशा पनाह मिलती थी। अपने घर से नाता टूटने के बाद काटुबाई का घर उसके लिए सबसे अधिक अपना और प्यारा हो गया था। वाख़्तीगुल ने इस घर में झांकने, अगर मिल जायें तो चाय पीकर तन गर्माने, अगर कोई बता दे तो इर्दगिर्द की अफवाहें सुनने और घोड़े को सूखे अस्तबल में

मौज मनाने की सुविधा देने की जोखिम उठाने का निर्णय किया। उसने सोचा कि झुटपुटा हो जाने पर मैं पहाड़ों में चला जाऊंगा।

बाख्तीगुल खड़ी ढाल पर छाये हुए चीड़ के जंगल के छोर पर पहुचा और उसने सावधानी से इधर-उधर नजर दौड़ाई। नीचे उद्धत-उद्दंड ताल्गार नदी अपने भयानक शोर से सारी घाटी को सिर पर उठाये हुए थी। काटुबाई के घर के आसपास और आगन मे कोई अजनबी नज़र नही आ रहा था, जीन कसे हुए घोड़े दिखाई नही दे रहे थे। बाख्तीगुल धीरे से फाटक पर पहुंचा, घोड़े से उतरा, उसे बाधा और घर के अन्दर गया।

काटुबाई के परिवार में कुल चार जने थे—वह वृद्ध, उसकी बीवी और दो बच्चे। वह अपने वंश के लोगो और रिश्तेदारो से, जो साल भर जहां-तहा घूमते रहते थे, अलग और एक ही जगह टिककर रहता था। उनके साथ उसकी कभी-कभार और संयोगवश ही मुलाकात होती और तब भी वे एक-दूसरे में खास दिलचस्पी न लेते। काटुबाई गर्मी में अनाज उगाता और जाड़े में ढोरों की देखभाल करता। उसके पास एक घोड़ा और कुछ बकरे तथा मेमने थे। बस, इतने से ही वह अपना काम चलाता। शिकार करके भी कुछ खुराक जुटा लेता। वह छोटे जानवरों के लिए बड़ी दक्षता मे फंदे और जाल लगाता और बड़े जानवरों को गोली से मारता। काटुबाई को शिकार का बेहद शौक़ हो गया था। बाख्तीगुल उसे कीमती कारतूसों का साझीदार बनाता और

वह खुद भी ऐसे जानवरों के शिकार का शौकीन था जिनके पद-चिह्न अन्य शिकारी खोज तक नही पाते थे। उसे दूर से एक ही गोली मारकर जानवर को बींध डालना अच्छा लगता था। इसी लिए इन दोनों के बीच गहरी छनने लगी थी।

वाल्तीगुल ने इस समय पूरे परिवार को घर मे पाया। काटुवाई बन्दूक साफ कर रहा था, उसकी बीवी हिरन का मांस भून रही थी और बच्चे मांस की दावत उड़ाने का इन्तजार करते हुए चूल्हे के करीब सटे हुए थे। अंगीठी पर मनपसन्द चाय उबल रही थी।

काटुवाई पचास से अधिक उम्र का था। उसकी छोटी-सी दाढ़ी मे सफ़ेदी आ गई थी, मगर गाल लाल-लाल थे, जवानों की तरह। वह नम्र और दयालु तथा प्यारा-सा व्यक्ति था। उसकी बीवी भी सुघड़ थी, गदरायी हुई, गोरे चेहरे और लाल लाल गालोंवाली। उसका चेहरा और शरीर के अंग बड़े-बड़े थे और वह मर्दों से अधिक मिलती-जुलती थी, पर हद दर्जे की भोली-भाली, बालिका या दयालु बुढ़िया के समान थी। सच तो यह है कि उन दोनों के पूर्वजों की आत्माओं ने उन्हें सौभाग्यशाली बनाने के लिये ही मिलाया था! बच्चे भी बिल्कुल मां-बाप के ही रूप थे। दोनों लड़के विनम्र, साफ-सुथरे, हंसमुख और सन्तोषी थे।

फ़ौरन चाय से उसका सत्कार किया गया। इसके बाद उसके लिए मास परोसा गया। जाहिर है कि भगोड़े को रात बिताने के लिए भी कहा गया... वाल्तीगुल के तन

में गर्मी आ गयी थी, उसका पेट भर गया था। उसने बिल्कुल वैसे ही अनुभव किया, जैसे कि अपने घर में, अपने परिवार में। वाख़्तीगुल का पीड़ित एकाकी हृदय द्रवित हो उठा, कसक उठा। वह अहाते में खड़े हुए अपने घोड़े के पास गया, जो रात की ख़ामोशी में चैन से सूखी घास चर रहा था। उसने घोड़े की गर्दन में बाहें डाल दी और टीसते हृदय से अपनी सख़्त मूंछ को बेचैनी से चबाता हुआ देर तक ऐसे ही खड़ा रहा।

काटुबाई और उसकी बीवी वाख़्तीगुल के बारे में वही कुछ जानते थे जो कुछ उसने बताया था। इससे अधिक उन्हे कुछ मालूम नहीं था। काटुबाई लोगों के घर नही जाता था, जरूरत और काम-काज के बिना गावों में इधर-उधर नही घूमता था, अफ़वाहों के फेर में नही पडता था और चुगलियों के बिना नही ऊवता था। जाहिर है कि दीन-दुनिया से अनजान इस दयालु को पता भी नही था कि इस भगोड़े चोर की वह कितनी अधिक मदद करता है और उसे अपने घर में छिपाकर कितनी बडी जोखिम उठाता है। क्या इसी लिए तो काटुबाई इतना निश्चिंत नही था? अनजान को भला दोष ही क्या दिया जा सकता है?

वाख़्तीगुल ने काटुबाई के घर मे पतझर की कई ठडी रातें बिताईं। वह अधेरा होने पर ही आता-जाता, ताकि अनचाहे भी मेहरबान लोगो के मत्थे न लग जाये। ताज़ादम होकर जाता और कभी ख़ाली हाथ न आता, किसी न किसी जंगली जानवर को मार लाता।

"हम तुम्हारी नहीं, बल्कि तुम हमारी मदद करते हो," रात को देर से खाना खाते हुए काटुवाई अक्सर कहता। "यह भी कह देना चाहता हूं कि अकेले का ख़ुदा रखवाला होता है।"

और बाख़्तीगुल ने सोचा कि अगर इस व्यक्ति को मजबूर होकर मुझे पुलिस के हवाले करना पड़े... तो बेशक ऐसा कर दे।

एक दिन सुबह को काटुवाई ने चिन्तित होते हुए कहा: "सुनने में आया है कि हमारे इलाके में मानो कोई ख़तरनाक, कोई बहुत बुरा आदमी फिरता है। आदमी नहीं—शैतान है... हल्केदार ने सभी से यह कहा है कि जिस किसी के दिल में ख़ुदा का डर है, वह इस दुष्ट को पकड़ कर उसके हवाले कर दे। हाल ही में नीचेवाले गांव में घुड़सवारों का पूरा टोला ही उसकी खोज करने आया था..." और काटुवाई ने जरा हंस कर अपनी बात ख़त्म करते हुए कहा: "बेटे, कहीं तुम ही तो नहीं हो वह शैतान?"

बाख़्तीगुल समझ गया कि अब यहां से चलने का वक़्त आ गया।

उसने उसी समय घोड़े पर जीन कसा और ताल्गार नदी के किनारे-किनारे चल दिया।

दूरी पर सफ़ेद फेन उगलती हुई नदी की खरखरी और घुटी-घुटी आवाज सुनाई दे रही थी। निकट आने पर उसका बर्फ जैसा ठंडा और झाग उगलता पानी दहशत [illegible] था। इस नदी से झुरझुरी पैदा करनेवाली ठंड की [illegible]

और बहुत ही तेज धाराओं मे गुथा हुआ इसका हरा पानी बहुत ही जोर-शोर से बह रहा था। बरबस आदमी किनारे से हट जाता, पर फिर भी पानी पर उसकी नजर टिकी ही रहती। ऐसे प्रतीत होता मानो असंख्य अजगर लहरिये बनाते, अपनी मोटी-मोटी पीठों को ऊपर उठाते, एक-दूसरे को कसते और एक-दूसरे का गला घोटते तथा वर्फ की तरह सफेद झाग उगलते जा रहे हैं। ऐसे लगता मानो वे लहरे नही, हजारों जंगली जानवर हैं, जो कानों के पर्दे फाड़नेवाला शोर करते और बेहद डरे हुए नदी की धारा के साथ ताबड़-तोड़ भागते चले जा रहे हैं और उनकी पीठें एक-दूसरी के ऊपर चढती-उतरती जा रही हैं।

बाख्तीगुल ने एक बड़े उभाड़ के ऊपर तंग और अंधेरी घाटी मे अपने घोडे को रोक लिया और नदी की ओर ध्यान से देखा मानो उन्मादी पानी के उन्माद का अनुमान लगाने की कोशिश की। गर्मी में तो तालगार में बहुत ही पानी होता है, मगर इस समय, पतझर के अन्त मे भी वह छिछली नही थी और बेकार ही उछल-कूद करती हुई शोर मचा रही थी। इस जगह यह नदी खिंची हुई कमान की तरह लग रही थी। ऊंचाई पर पानी की धाराएं अतिकाय चट्टानों के नीचे से बह रही थीं, मानो ग्रानिट की नाक या पाषाणी राक्षस के गले से निकलकर आ रही हों और नीचे दूसरी चट्टान के पास आकर मानो अतल खड्ड में पूरी तरह विलीन हो गई थीं। ऐसे लगता था मानो एक पर्वत दूसरे पर्वत की प्यास बुझा रहा हो, किन्तु उसे तृप्त न कर पाता हो।

बाख्तीगुल मोड़ लांघकर अधिक ढालू स्थान पर, एक छोटी और खुली घाटी मे पहुंच गया। यहां नदी अधिक चौड़ी और कम गहरी हो गई थी, पर इस जगह इसे पार करने की बात सोचना भी बहुत भयानक था। चपटी, चिकनी और एक-दूसरी के पीछे भागती तथा ऊंचा और मोटा-मोटा और निश्चल फेन उगलती लहरों को देखकर सिर चकराने लगता था।

"पुल तो नीचेवाले गाव में है," बाख्तीगुल ने सोचा। "ऐसे नदी पार नही की जा सकेगी..."

इसी समय उसके घोड़े ने सिर झटका और कान खड़े किये। बाख्तीगुल ने उधर देखा जिधर घोड़े की नजर थी और उसका दिल बैठ गया।

तट से लगभग आध मील की दूरी पर एक नंगी चट्टान के पीछे से दो घुड़सवार सामने आये। वे साधारण लोग नही थे, अपने कुरते की केवल बायी आस्तीन ही पहने थे, हाथों मे सोटे लिये हुए थे। उनके घोड़े ख़ूब मोटे-ताज़े और ताज़ादम थे।

बाख्तीगुल ने जल्दी से इधर-उधर नजर दौड़ाई और उसे अपने पीछेवाली ढाल पर चार घुडसवार और दिखाई दिये। उनमें से एक सम्भवतः बन्दूक लिये हुए था।

तो यह किस्सा है। लगता है कि मुझे घेरे में ले लिया गया है। मै पहाड़ी फंदे में फंस गया हूं। सफ़ेद फेन वाली और शोर मचाती हुई तालार नदी उसके रास्ते में बाधा

बनकर खडी थी, वह उसे वीरान और अगम्य स्थानों से अलग किये हुई थी।

छिपने की जगह कहीं नही थी। घेरा तोड़ा जाये? इसमे कामयाबी नही मिलेगी। ये लोग मेरा कोई लिहाज नहीं करेंगे। मुझे बच निकलता देखेंगे तो गोली ही मार देंगे।

सोच-विचार करने का भी समय नहीं था। घुड़सवारों की उस पर नजर पड़ गई और वे भयानक रूप से मुह फाड़कर चिल्लाते, सोटे हिलाते और सरपट घोड़े दौड़ाते हुए उसकी ओर बढ़ चले। आगे-आगे तीन थे और उनके पीछे छः या सात और भी, जिन्हें गिनने का उसके पास वक्त नही था। सीटी की लम्बी-ऊंची आवाज में तालगार का शोर दब गया।

अब तो केवल एक ही रास्ता था, एक ही उम्मीद बाकी रह गई थी...

बाख्तीगुल ने सोचे-विचारे बिना बन्दूक को पीठ पर कस लिया, छाती पर बंधे कारतूसों के चिकने चमड़े वाले थैले को छुआ और छः गोलियोंवाली पिस्तौल को जेब में डाल लिया। उसने उड़ती-सी नजर से तट पर ऐसी जगह चुन ली, जहा उसे पानी कुछ छिछला प्रतीत हुआ और घोड़े पर चाबुक सटकार कर उसे पानी की ओर बढ़ा दिया।

घोडा बढ़ चला। उसने सिर ऐसे झुका लिया मानो पानी पीने वाला हो और धीरे-धीरे तथा सावधानी से बर्फीले फेन मे आगे जाने लगा।

तट के करीब पानी घोडे के घुटनों तक था। इसके आगे वह गहरा हो गया, पानी ने उसे पेट के बल ऊपर उठा

लिया, धकेला, एक बग़ल पेला और बहा ले चला। अब तट, पहाड़ और आकाश — सभी कुछ उलट-पलट गया और धमाके के साथ बाख़्तीगुल की आंखों के सामने मानो एक विराट काले-काले और हरे हिंडोले की भांति घूमने लगा।

"ओ ख़ुदा बचाओ... बुज़ुर्गों की रूहो मदद करो," घोड़े की पीठ पर लेटा हुआ बाख़्तीगुल प्रार्थना करने लगा।

ज़ोरदार और मज़बूत धारायें बाख़्तीगुल और घोड़े को तेज़ी से अपने साथ बहाती हुई कभी उन्हें ऊपर को उठातीं, कभी नीचे गिरातीं। पानी बाख़्तीगुल को सिर से पैर तक थपेड़े मार रहा था, धुन रहा था, कूट-पीट रहा था। लगता था मानो उस पर हज़ारों सोटे और मूसल बरस रहे हों जो उसे घोड़े से अलग करना चाहते हों। मगर वह अपना पूरा ज़ोर लगाकर घोड़े के साथ चिपका हुआ था और स्पष्टतः यह अनुभव कर रहा था कि उसके नीचे घोड़ा अपनी पूरी ताक़त से संघर्ष कर रहा है, कि जलगत पत्थरों से वह कितनी ज़ोरदार चोटें खा रहा है, उसके अंग भंग हो रहे हैं, मगर वह जूझता जा रहा है, हिम्मत न हारकर घुड़सवार को बचा रहा है। जैसे ही घोड़े ने हिम्मत हारी कि खेल ख़त्म! घोड़े की टांगें और छाती तो सही-सलामत हैं न? दायां तट कहां और बायां कहां है? कुछ भी तो समझ में नहीं आता... बाख़्तीगुल के सामने पानी के लालची हरे मुंह खुले हुए थे और वह अन्धाधुंध उनकी ओर तेज़ी से बढ़ा जा रहा था और अच्छी तरह यह समझ रहा था कि वह मौत के मुंह में जा रहा है। अपनी आख़िरी पूरी कोशिश

करते हुए उसे अपने बचने की कोई उम्मीद नजर नही आ रही थी।

घडी भर के लिए घोड़े को पेट के बल पानी से ऊपर उठाया गया और वाल्तीगुल को अचानक अपने सामने भीगी हुई काली चट्टान दिखाई दी। "बस... अब सब कुछ ख़त्म!" उसके दिमाग में यह विचार कौधा। एक क्षण बाद वे इस चट्टान से टकरा जायेंगे, टुकड़े-टुकड़े होकर अलग-अलग दिशाओं में बिखर जायेंगे... मगर ऐसा कुछ नही हुआ। यह तो मानो करिश्मा ही हुआ कि घोड़ा काली चट्टान के क़रीब जाकर रुक गया और यहा तक कि पैरों पर खड़ा हो गया। वाल्तीगुल ने इधर-उधर देखा, खांसकर गला साफ किया और थूका। खु़दा का शुक्र है! तीन-चार क़दम की दूरी पर ही तट था...

पर इसी समय उसने अनुभव किया कि घोड़ा चिकनी चट्टान से नीचे फिसलने लगा है। पानी उसे बहाये लिये जा रहा है! घोडे ने अपने पीले दांत दिखाते हुए खरखरी-सी आवाज निकाली और अपनी जलती हुई नजर घुमाकर देखा। बस वह डूबा कि डूबा। वाल्तीगुल कुछ भी न समझते हुए एक उन्मादी की तरह कुछ चीख उठा। शायद उसने कहा: "अलविदा" अथवा शायद "माफ करना"। फिर वह घोड़े की पीठ पर खड़ा हो गया, उसने कानों के बीच उसके सिर पर पैर रखा और अपनी पूरी ताक़त से, हताशा जनित शक्ति से तट की ओर छलांग लगाई।

पानी डंडे की तरह उसके पैर पर लगा और उसने सोचा : "बस, अब खेल ख़त्म!"

होश आने पर उसने अपने को तटवर्ती पत्थरों पर मुह के बल लहूलुहान पड़े पाया। उसके कपड़े तार-तार हो गये थे और वह दर्द और ठंड से कांप रहा था। सबसे पहले उसे अपने घोड़े का ध्यान आया। बाख़्तीगुल ने कराहकर सिर ऊपर उठाया, मगर आंखों में छाई हुई लाल धुंध के कारण उसे कुछ भी दिखाई नहीं दिया।

दायां पहलू और जांघ ऐसे घायल थी मानो दरिन्दों ने अपने पंजों से उन्हें नोच डाला हो। सारे जिस्म पर खरोंचे थीं, नील पड़े हुए थे। मगर हड्डियां और सिर सही-सलामत थे। बन्दूक और कारतूसोंवाला थैला बच गया था, केवल छः गोलियोंवाली पिस्तौल जेब के साथ ही वह गई थी।

अंधा और दर्द से कराहता हुआ बाख़्तीगुल तट की ओर ऊपर रेंगा। जब खूनी धुंध उसकी आंखों के सामने से हटी तो उसने एक पागल की तरह तालगार को घूरा। अगर उसमें ताकत बची होती तो वह दर्द से हाय-वाय करने लगता। घोड़ा कहीं नज़र नहीं आया। चाबुक तो मानो बाख़्तीगुल का मज़ाक उड़ाता हुआ उसके हाथ के साथ लटक रहा था।

"हां, तो ज़ीन पर ही मरना नहीं लिखा था किस्मत में... घोड़ा नहीं रहा! वह पीले दांतों वाला निडर दोस्त अब वहां चला गया था, जहां से कोई लौटकर नहीं आता..."

बाख़्तीगुल ने नफ़रत से दांत पीसते हुए दूसरे किनारे की ओर देखा।

बेचैनी से उछलते-कूदते घोड़ों पर कोई डेढ़ दर्जन घुड़सवार इधर-उधर हिल-डुल रहे थे। वे धारा से काफ़ी दूर थे, पानी के निकट नहीं आ रहे थे। जो दृश्य उन्होंने देखा था, उससे सवार और घोड़े डर-सहम गये थे। शैतान ताल्गार को पार कर ही गया!

तब वाख़्तीगुल ने अपना घायल घूंसा ताना और उसे धीरे-से हिलाते हुए फटी-सी आवाज़ में कहा:

"ज़रा सब्र कर, मैं तुझे मज़ा चखाऊंगा, नेक और उदार बाई..."

६

वाख़्तीगुल कराश-कराश घाटी के ऊपर कठोर और निर्जन प्रदेश में घूमता रहता। रात को वह चीड़ के जंगलों में छिप जाता, काटेदार झाड़ियों के बीच पथरीले गढ़े में छोटी-छोटी लपटोंवाला धुएदार अलाव जला लेता ताकि पतली-सी चाय अथवा कोई अन्य साधारण-सी चीज़ उबाल ले। सूर्योदय होते ही वह दर्रे के उस मटमैले मार्ग पर चला जाता जो बल खाता हुआ वीरान-सुनसान पहाड़ों में से गुज़रता था।

वाख़्तीगुल अपनी सूजी हुई आंखों को सिकोड़कर दिन भर इसी मार्ग पर नज़र जमाये रहता, अपनी काली मूछों को चबाता रहता। कभी-कभी वह नीचे इस मार्ग पर उतर आता, आगे-पीछे टहलता और इधर-उधर देखता रहता मानो कुछ खोज रहा हो। कभी-कभी उकड़ूं बैठ जाता, कभी एक

जगह और कभी दूसरी जगह पेट के बल लेट जाता, बहुत ही उदासी-भरे विचारों में उलझा-खोया-सा और अपने-आप से ही अस्पष्ट-सा कुछ बुदबुदाता रहता। वह पक्षी की भांति एक आख मूंदकर मानो आख मारते हुए इस मार्ग को टकटकी बांधकर देखता जाता, देखता जाता।

बाख़्तीगुल का चेहरा पीला पड़ गया था, गालों पर बिल्कुल लाली न रह गई थी। उसे लगता था मानो उसके शरीर में ज़िंदगी के सभी रस सूख चुके हैं। उसके हाथ कांपते और हिलते-डुलते रहते मानो वह अपनी उंगलियों से किसी अदृश्य चीज़ को दबाता और पीसता रहता। उसकी सांस बेचैनी से चलती और वह अपनी सारी आत्मा को उंडेलता हुआ कभी गहरी सास लेता और कभी परेशान होता हुआ [खरखरी आवाज़ में खांसता रहता।

बेकरारी उसे परेशान करती रहती। उसके सूजे और मानो बुख़ार के कारण तपते होंठों पर झुकी हुई लम्बी मूछें कभी-कभी उस बाज के पंखों जैसी प्रतीत होती, जो किसी लाल लोमड़ी को बर्फ़ में दबोच लेता है।

दिन बीतते गये और बाख़्तीगुल हर दिन ऊंचाई से नीचे आकर घाटी में से होता हुआ इस मार्ग की ओर जाता। उसे जीभर कर देखने के बाद वह आकाश को छूती हुई पहाड़ी चरागाह की ओर देखता जिसका रंग पतझर में फीका पड़ चुका था और जहां समय से पहले गिरी हुई बर्फ के धब्बे नज़र आते थे। इसके बाद वह ऊंचे असी पर्वत की ओर लाल-

लाल ग्रांखों से देखता। ग्रौर बर्फ़ की चमक के कारण चकाचौंध होकर उन्हें सिकोड़ लेता। उस समय यह समझ में न ग्राता कि उसकी ग्राखो मे ग्रांसू भरे हैं ग्रथवा उनमें गुस्से की ग्राग चमक रही है।

ख़ुदा इस बात का गवाह है कि वह ऐसा नही चाहता था जो उसने करने की ठान ली थी, ठीक वैसे ही जैसे उसने पहले नेकनाम धावो में हिस्सा नहीं लेना चाहता था ग्रौर न ही बदनामी वाली घुड़चोरी में। इसी लिए उसने कुछ भी सोचे-समझे बिना मौत को गले लगाया ग्रौर तात्गार नदी मे कूद गया। उसकी क़िस्मत में तो मानो नया जन्म लेना लिखा था। ऐसा ही समझना चाहिए कि ग्रभी उसने ज़िन्दगी के प्याले को पूरी तरह नही पिया था। वह जीवन की ग्राख़िरी बूंद यहां कराश-कराश मे पीने की तैयारी कर रहा था!

कराश-कराश – यह वास्तव में नंगी चट्टानोंवाली तीन पर्वतमालायें थी। इनके गिर्द चीड़ ग्रौर फर के जंगल थे। ये पर्वतमालायें थीं – मुख्य कराश, मध्यम कराश ग्रौर निम्न कराश... काले पर्वत, ग्राबनूसी चट्टानें ग्रौर शाश्वत रूप से काले जंगल... यहां दर्रा बहुत ऊंचाई पर ग्रौर दुर्गम्य था ग्रौर इर्दगिर्द के इलाके मे केवल एक ही। गर्मियों में यहां से धीरे-धीरे चलता हुग्रा एक के बाद एक कारवा ग्रुर्गेन ग्रौर चेल्कार की ग्रोर जाता। यही से होकर मिमियाती भेड़ों और हिनहिनाते घोड़ों के रेवड़ के रेवड़ ग्राकर्षक पहाड़ी चरागाहों की ग्रोर धारा प्रवाह बढते जाते। ग्रब बरखा-पानी

की पतझर में, बर्फ़ीले तूफान और बर्फ के तूदों के समय कोई एकाध राहगीर ही दर्रे को जल्दी-जल्दी पार करता है अपने घोड़े को टिटकारता और इधर-उधर भय से देखता है कि कही कोई भेड़िया तो आसपास नही है जो ढोरों के साथ-साथ ही मैदानों में उतर आते है।

केवल बाख्तीगुल ही यहा से नही जाता था। वह जानता था कि यहीं उसे अपनी क़िस्मत को आजमाना होगा। वह पथ की ओर देखता हुआ उचित मौके की प्रतीक्षा करता रहता।

उसने अपने लिए मध्यम कराश पर्वतमाला चुनी। उसने इसे अच्छी तरह छान मारा, सभी ओर घूमा, हर दरार और हर मोड़ को देखा-भाला, कुत्ते की तरह पहाड़ों की गन्ध ली और उसके हर कोने को उसी तरह याद कर लिया जैसे मुल्ला अपनी धार्मिक पुस्तक को रट लेता है। वह ऐसी जगह की तलाश करता रहा जहां से ऐसे निकल आये मानो ज़मीन में से निकला हो और फिर उसी क्षण ज़मीन में समा भी जाये। उसने ऐसी जगह खोज ली।

रास्ता पथरीली घाटी की ढाल पर से जा रहा था और राहगीर को बड़े चौडे अर्ध-चक्र के गिर्द होकर जाना पड़ता था और बहुत दूरी से ही उसकी झलक मिल जाती थी। दर्रे के और करीब यह मार्ग दीवार की तरह खड़ी चट्टानों के साथ-साथ गहरी घाटी के किनारे-किनारे जाता था। यहा अगर कोई सामने से आ जाता तो केवल एक-दूसरे से सटकर ही लांघना सम्भव था। मार्ग के आमने-सामने गहरी घाटी के पार एक नुकीली चट्टान पर एक दूसरे से ऐसे सटे हुए मानो

एक ही जड़ से निकले हों, एस्प के तीन पुराने वृक्ष खड़े थे। एस्पो के बिल्कुल पीछे से सिर चकरा देनेवाली ढाल शुरू होती थी, जिस पर जहा-तहा उभरी हुई लाल चट्टानें बिखरी थी जिन पर बकरे ही खड़े रह सकते थे। इस ढाल के दामन मे घना-काला जंगल था जहा प्यादा ग्रौर घुड़सवार भी ग्रासानी से छिप सकता था।

वाख़्तीगुल पौ फटने के साथ यहां ग्राकर ऊंचाई पर उगे एस्प के इन वृक्षो के धुधले रुपहले तनों को देर तक ग्रपने खुरदरे ग्रौर ठड से ग्रकड़े हाथों से बड़े प्यार से सहलाता रहता।

वह जिस दुनिया में रह रहा था उसे बहुत खिन्न मन से देखता था। पतझर के ग्राकाश पर धुंधली ग्रौर मैली-सी चादर छाई रहती। दूरी पर स्थित हिम-मढ़ित चोटियों को बादलों की पगड़ी ढके रहती। पर्वतों के पाषाणी चेहरे पर उदास-सी परछाइयां पड़ती ग्रौर दोपहर के समय भी पर्वतमालायें ग्रौर उनकी चोटियां मानो नाक-भौंह सिकोड़े रहती, ग्रपनी झबरीली भौंहो पर ऐसे बल डाले होतीं जैसे कि वे किसी कारणवश नाखुश हो। चारों ग्रोर क़ब्र की सी ख़ामोशी छाई रहती। नीले बादलो को चीर कर निकल ग्रानेवाली उषा के प्रकाश मे एस्प वृक्षो के सामनेवाला मार्ग गहरा लाल-बैंगनी हो जाता, फूला-फूला ग्रौर रक्त-रंजित सा लगता। इर्दगिर्द की चट्टानो पर लाल धब्बे चमकने लगते।

"अगर ऐसा ही होना बदा है, तो होने दो..." वाख्तीगुल फुसफुसाया और उसने अपनी मूछें चबायी।

दिन जब साफ़ होता तो वह दर्रे के ऊपर चला जाता कि खुल कर सास ले सके, कि दिल पर पड़े हुए बोझ को हल्का कर पाये।

बड़ी दूरी पर धूप नहायी दक्षिणी दिशा मे चीड़ वृक्षों का सारीमसाक्त जंगल दिखाई देता था। यहा से वह कत्थई रंग के एक अतिकाय घोड़े के पुट्ठे के समान लगता था। जंगली लहसुन की तरह तेज गंधवाले इस जंगल मे वाख्तीगुल अपने भूतपूर्व मालिक के झुंड से चुरायी हुई घोड़ी के साथ छिपा था और उस समय उसे इतनी भूख लगी थी कि राल की गन्ध से उसे मतली-सी होने लगी थी... यह केवल एक वर्ष पहले की बात थी। यह उसके जीवन का वह अन्तिम वर्ष था जो शुरू मे परेशानी की हद तक आरामदेह, असामान्य रूप से भरा-पूरा प्रतीत हुआ था।

दूसरी ओर दर्रे की ठण्डी हवाओं से रक्षा करनेवाली नाजार पर्वतमाला खड़ी थी। उसका नीला-सा चितकबरा कूबड़ पसीने से काले हुए खेत-मजदूर के हाथ की नसों की भाति उभरा हुआ था। इस पर्वतमाला पर भी एक-दूसरे के साथ सटे हुए युगों पुराने चीड़ के पीले-लाल और फर के काले-हरे वृक्ष सिर उठाये खड़े थे। कही-कही उनके शिखर पहाड़ी चोटियों की ओर जा गिरे थे और पाषाण-वर्षा से छाल वंचित की गई उनकी शाखायें और उलझी-उलझायी विराटकाय जड़ोंवाले उनके तने प्राचीन सूरमा के समय बीतने के कारण

काले पड़े हुए पंजर जैसे लगते थे। यह पंजर तो जैसे पड़ा सड़ता रहता था और इसके नीचे कुछ भी नही उगता था।

पर्वतमाला और बादलों के ऊपर अछूती वर्फ से ढकी हुई ओज़र की चोटी निरन्तर चमकती रहती थी। बूढा सफेद सिर, मगर नाम ओजर यानी दिलेर। रातों को भी वह आकाश को छूती हुई स्पष्ट रूप से रुपहली-रुपहली दिखाई देती रहती और कभी-कभी तो वाल्तीगुल को ऐसे लगता मानो वह अपनी महती और अजेय आकृति से उसे अपनी भयानक चोटी की ओर बुलाती है जहां दया नाम की कोई चीज नही, जहा सब कठोर और निर्मम ही निर्मम है।

हा, बादलों के ऊपर दिखाई देनेवाला यह हिमानी शिखर वाल्तीगुल से सचमुच बाते करता, मानो उसका साथ देता और यह समझता था कि इस एकाकी और सभी से दुत्कारे हुए व्यक्ति के मन मे क्या है जो अपनी प्यारी मातृभूमि पर रहने से हताश हो चुका है।

दिन गर्म था और हवा ने अपने पंख समेट लिये थे। वाल्तीगुल दर्रे के ऊपर खड़ा हुआ श्वेत ओज़र शिखर से मूक बातचीत कर रहा था कि अचानक किसी कारणवश उसने घूमकर देखा। वह सावधानी से चट्टान की ओट में हो गया और उसने चिन्ता से इधर-उधर नजर दौड़ाई... दूर मार्ग पर उसने मध्यम कराश की उदास दीवारों के नीचे एक घना और काला दल-सा देखा—वहां घुड़सवार थे।

वे ग्रसी पर्वत की ग्रोर से ग्रा रहे थे ग्रौर घाटी के घुप ग्रंधेरे में मानो डूबे-डूबे से, धीमे-धीमे बढ़ रहे थे।

वाल्लीगुल धीरे से चीख़ा, झुका ग्रौर सरसराती हुई ढाल को पार करते हुए तीन पुराने वृक्षों की ग्रोर भाग चला।

वह दबे-दबे, हांफता हुग्रा ग्रौर ठण्डे पसीने से तर-ब-तर सलेटी तनों के पीछे जा कर लेट गया। उसी क्षण उसने ग्रोजर की ग्रोर देखा। चकाचौंध करता हुग्रा सफेद शिखर उसकी ग्रांखों में ग्रांखें डालकर ऐसे देख रहा था मानो जशन मनाती हुई हज़ारों ग्रांखें शरारत ग्रौर उमंग से चमक रही हों।

वाल्तीगुल ने ग्रपने दिल पर हाथ रख लिया—वह तो मानो उछलकर बाहर ग्रा जाना चाहता था। उसके कानों मे घटे-से बज रहे थे। उसने ग्राखें सिकोड़कर नाजार जंगल की ग्रोर देखा। उसे लगा मानो चुभती सुइयोंवाले फर वृक्ष ग्रपनी जगह छोड़कर दुर्ग पर धावा बोलनेवाली, ग्राख़िरी हमला करनेवाली सेना के ग्रसंख्य दस्तों की भाति क़तार बाधकर कूबड़वाली पर्वतमाला पर लहरों की तरह ऊपर को भागे जा रहे है... मगर दूसरे ही क्षण उसे दूसरी ग्रनुभूति हुई— उसे प्रतीत हुग्रा कि वहा, ऊचाई पर सैनिक नहीं, फर ग्रौर चीड़ के वृक्ष है ग्रौर वे ग्रपने शाखारूपी हाथों को लोगों की तरह फैलाये हुए उसके इरादे से डर कर सिर पर पैर रखकर भागे जा रहे हैं।

वाल्लीगुन ने ग्रपनी सूजी हुई ग्राखों पर हाथ फेरा ग्रौर छाती के बल जमीन पर लेट गया कि उसका दिल कुछ शान्त

हो जाये। उसने पसीने से तर और यातना से विकृत अपना चेहरा जमीन पर टिका दिया। जमीन चुप्पी साधे थी और उस पर दूर से आती हुई-घोड़ों की टापों की भारी और गम्भीर आवाज फैल रही थी।

वाङ्तीगुल ने एक बीमार की तरह अपना सिर बड़ी मुश्किल से ऊपर उठाया। एस्प वृक्षों के एकदम पास से ही नीचे की ओर बर्फ पिघलने के कारण भरे हुए नाले थे। वे झुर्रियों जैसे लगते थे और उन पर आंसुओं के निशानों के समान मटमैले फीते-से रिस रहे थे।

इस रास्ते पर तो हमारी मुठभेड़ होकर ही रहेगी! वाङ्तीगुल ने इतने जोर से दांत पीसे कि उन मे दर्द होने लगा।

"जो होना है, सो हो," उसने धीरे से मानो मन्त्र पढ़ते हुए कहा और अपनी दायी कोहनी के नीचे से बन्दूक की लम्बी नली सामने की ओर बढ़ाई।

नीली नीली जाली में मानो पारदर्शी रेशमी पर्दे के पीछे उसे मार्ग की पतली-सी कमान पर घुड़सवार दिखाई दिये—कोई पन्द्रह व्यक्ति!

ये न तो चरवाहे थे और न ही हरकारे, बाइज्जत लोग थे। इनके अधिकाश घोड़े तेज चालवाले थे, चुने हुए और ख़ूबसूरत हल्के रंगोंवाले। घोड़ों के साज और जीन बढ़िया थे और दूर से हल्की-हल्की रुपहली झलक देते थे। धनी-मानी लोग इत्मीनान और निश्चिंत मन से चले आ रहे थे। मध्य में सब से अधिक मोटा-ताजा सवार था और आगे-पीछे

अपेक्षाकृत दुबले-पतले। बाऊ्तीगुल को नारियो की भी झलक मिली जो ख़ूब सजी-धजी हुई थी, किसी बडे पर्व के अनुरूप! काली चट्टानो की पृष्ठभूमि में फूले फुदनोंवाली उनकी शॉलों के इन्द्रधनुषी रंग आंखो को चकाचौध कर रहे थे और उनकी बर्फ़ जैसी सफेद रेशमी फ्रॉकों के आंचल लहरा रहे थे। वे सभी लोग बहुत ख़ुश थे, निश्चिंत और उमंग-तरंग भरे। घाटी के पार से ख़ुशी भरी आवाज़ें और ठहाके सुनाई दे रहे थे। जहां रास्ता कुछ चौड़ा था, वहां वे दो-तीन एक साथ हो जाते थे और जहा संकरा होता वहा एक के बाद एक घोडा चलता था। घुड़सवार एक-दूसरे को पुकारते थे, मुड-मुडकर देखते थे, बातचीत करते थे और ज़ीनों पर पीछे की ओर हटते हुए जोरों के ठहाके लगाते थे। ये ख़ानदानी, अमीर और हसते-चहकते लोगो का दल था!

आंखें सिकोड़े और होंठ काटता हुआ बाऊ्तीगुल इन घुड़सवारों के बीच एक की खोज कर रहा था। वह उसे देख और पहचान कर धीरे-से कुनमुनाया! वह रहा वह चिकना-चिकना, रोबदार और दरियादिल। वह रहा वह गोरे और घमंडी चेहरेवाला। वह सफेद अयालों और सफेद पूंछ तथा सफ़ेद टखनोंवाले जाने-पहचाने सुनहरे-लाल घोड़े पर सवार था। घोडा तो जैसे मक्खन मला हुआ था, उसकी चर्बी चमकती थी और उसके बाल आग जैसी, बिल्कुल सुनहरी झलक देते थे। इसी घोड़े पर सवार होकर बाऊ्तीगुल जवानों को धावे के लिए ले जाता था... ओह, कैसी तेज चालवाला है यह घोड़ा! ओह, कैसा बाका घुड़सवार है वह! औरतें

एकदम उसके पीछे हो जातीं, बार-बार उसके बिलकुल पास आ जाती, मज़ाक करती, उसे हंसाती और ख़ुद भी शरारती ढंग से हंस देती। जाहिर था कि वे बहुत ही रंग में थीं।

अचानक झुरझुरी के अदृश्य बर्फ़ीले हाथों ने बाख़्तीगुल को जकड़ लिया। बन्दूक हिल गई, निशाना साधना सम्भव नहीं रहा।

तब बाख़्तीगुल ने फिर से ओज़र की ओर देखा... उसी क्षण उसके हाथों की कपकपी गायब हो गई। सफ़ेद सिर ने अपने ऊपर से बादलों की पगड़ी उतार दी और वह बड़ी शान से सिर से कधो तक चमक उठा। बाख़्तीगुल को मानो अपने कर्तव्य-पालन का आदेश मिला। वहा ऊंचाई पर शायद इस समय पागलों की तरह सीत्कार करती हुई हवा मनमानी कर रही होगी, तालगार नदी की भाति ज़ोरदार पद-प्रहार कर रही है। मानो इस हवा के सुर मे सुर मिलाकर बाख़्तीगुल ने ज़ोर की हुंकार भरी और पुरानी तथा भारी बन्दूक को कस कर पकड़ लिया।

घुड़सवारो का हसता-चहकता दल खड्ड के ऊपर और काली-पथरीली दीवार की छाया में संकरी पगडंडी पर बढा आ रहा था। दर्रे के निकट, खड्ड के बिल्कुल किनारे पर नीचे की ओर झुकी हुई जंगली फलों की कुछ झाड़िया उगी हुई थीं जिन मे पके हुए, रसीले और कराश-कराग की चट्टानों की तरह काले-काले फल लगे हुए थे। झाड़ियों के क़रीब पहुंचने पर हर घुड़सवार ज़ीन से झुकता और काले-काले जंगली फलो को तोड़ लेता। केवल सुनहरे घोड़ेवाले

सवार ने ही हाथ नही बढ़ाया। लेकिन जब तक वह बड़ी शान से झाड़ियों के पास से गुजरा, तब तक बाख़्तीगुल ने अपनी बन्दूक़ कसकर थाम ली थी और उसकी ओर निशाना साध लिया था।

वह ख़ूबसूरत बाई के अपनी ओर मुंह करने की प्रतीक्षा कर रहा था।

पत्थरों पर बजते हुए घोड़ों के नाल ऊंची आवाज़ पैदा कर रहे थे। वे अधिकाधिक निकट आते जा रहे थे। और लीजिये, अब वे वहा आ गये जहा से रास्ता तीन एस्प वृक्षों की ओर मुड़ जाता था। बाख़्तीगुल की आखों के सामने शानदार भूरे घोड़े की टागें झलकी और उसके पीछे-पीछे था सुनहरा घोड़ा। वह बड़े इत्मीनान से, अपना सुनहरा सिर ऊपर उठाये और नज़ाकत से सधे-सधाये क़दम रखता हुआ बढ़ता जा रहा था। बाख़्तीगुल को बाई के पीछे शॉल में लिपटी-लिपटाई एक जवान नारी की छोटी-सी आकृति दिखाई दी। स्पष्टतः यह तो दोसाई कुल की कालिश यानी जारासबाई की दूसरी बीवी थी जिसकी चुनावों की दौड़-धूप के समय ही बाई के साथ शादी तय हो चुकी थी। ख़ुशकिस्मत पति उसे अपने गांव ले जा रहा था।

"ठहरो!.. रुक जाओ..." बाख़्तीगुल ने अपने-आप से कहा। इस समय गोली चलाना ठीक नही होगा, वह दोनों के तन के पार हो जायेगी। मुझे घुड़सवार के आगे झुकने तक इन्तज़ार करना चाहिये।

बेहद ख़ुश और ख़ूबसूरत बाई घोड़े के कान के ऊपर

देखता हुआ अपनी ढग से सवारी हुई दाढी पर हाथ फेर रहा था, उसी समय वाख़्तीगुल ने धीरे से खटका दवा दिया। नीले ऊन और लोमड़ी की खालवाले फर कोट मे वहा एक वड़ा-सा सूराख हो गया, जिस जगह का उसने निशाना साधा था और सूराख़ के ऊपर नीले-नीले धुए का पारदर्शी लहरिया-सा बल खाने लगा। घोड़ा पिछाड़ी के वल खड़ा हो गया और घुडसवार चादी से सजे हुए ज़ीन से नीचे लुढ़क गया। उसके फर के कोट के छोर हवा मे लहरा उठे।

ज़ीन से नीचे गिरते वाई को देखता हुआ वाख़्तीगुल अनचाहे ही उछलकर खड़ा हो गया। सन्नाटे मे आये और डरे हुए घोड़ों को मुश्किल से वश मे कर पाते हुए वाई के साथियों ने भी उसे गिरते देखा।

इसके वाद वाख़्तीगुल एस्प वृक्षों के पीछे सिर चकरा देनेवाली ढाल पर लाल चट्टानों के उभारों को वकरे की भांति फादता हुआ भाग चला। अपने पीछे उसने हवा को चीरती हुई कालिश की चीख़ सुनी:

"हाय, वाई! .. वाख़्तीगुल।"

वाख़्तीगुल सिहरा, झुका और पीछे की ओर मुड़कर देखे बिना जगल की ओर भाग गया।

शाम होते-होते वाख़्तीगुल कराश-कराश से बहुत दूर चला गया था, मगर उसका दिल उसी भांति ज़ोर से धक-धक कर रहा था जैसे कि तीन एस्पों के पास। बुख़ार की सी हरारत बनी रही। बेशक ठंड नहीं थी, फिर भी उसे बार-बार ज़ोरदार झुरझुरी महसूस होती थी।

झुटपुटा होने पर एक अपरिचित शिकारी से उसकी मुलाकात हुई। पहाड़ी बकरा जिसका उसने शिकार किया था, उसके घोड़े पर लदा हुआ था। बाख़्तीगुल ने उसे आवाज़ देकर रोका, उसके शिकार को देखा और निर्दयी वक्र मुस्कान के साथ कहा :

"आज मैंने भी एक पहाड़ी बकरे का शिकार किया है..."

१०

बाख़्तीगुल जेल में था।

वह जीवित था, सांस लेता था, चलता-फिरता था, बातचीत करता था, मगर यह समझ पाना कठिन था कि वह कैसे ज़िन्दा बच गया, शरीर में अपनी आत्मा को कैसे बनाये रख पाया।

कराश-कराश के हत्याकाण्ड के बाद जारासबाई के सम्बन्धियों ने पूरे जानिस कुल मे सरगर्मी ला दी। शहर के अधिकारियों ने उनकी मदद के लिए एक बड़ा पुलिस अफ़सर भेज दिया। बाख़्तीगुल का अपने जन्म-स्थान से दूर भागने को मन नही हुआ, वह तो दूसरे प्रदेश में भी नही गया। उसे गिरफ़्तार कर लिया गया।

छोटे-से सार कुल के ग़रीब लोग जिस जगह रहते थे, ताक़तवर जानिस कुल के लोगो ने वहां की ईंट से ईंट बजा दी, वहां केवल धूल ही धूल बाकी रह गई। जानिस कुल ने सार कुल के लोगों की मामूली-सी जमा-पूंजी भी लूट ली,

यहा तक कि फटी-पुरानी और गन्दी दरिया तक भी नही छोड़ी, पूरी तरह से कंगाल कर दिया और बच्चों तथा बूढ़ों समेत उन्हे वुर्गन और चेल्कार से निकाल दिया। हातशा और उसके बच्चों को दर-दर की भीख मांगने के लायक बनाकर छोड़ दिया गया।

बाख़्तीगुल अब नये, शहरी मुकदमे, रूसी काज़ियों के निर्णय का इन्तज़ार करने लगा।

हातशा नगर के एक अमीर काज़ी के घर में नौकरानी हो गई। जाहिर है कि वह बच्चों के साथ बहुत ही ख़स्ताहाल जिंदगी बिताती थी: उसे चारों मे अपनी रोज़ी-रोटी बांटनी होती थी...

ठीक मौक़ा देखकर बाख़्तीगुल ने बड़े जेलर के पैर जा पकड़े। कुछ दिन बाद दरवाज़ा खुला और जेल की गुफा जैसी अंधेरी कोठरी में सेइत आया!

लड़का जेल मे ही रहने लगा।

मिलनसार, चिन्तनशील और मितभाषी सेइत सभी क़ैदियों—क़ज़ाखों और रूसियों—को पसन्द आया। उन में से बहुत-से उसे अपनी रोटी का कुछ हिस्सा खिला देते। बाख़्तीगुल जब यह देखता तो उसका दिल टीस उठता।

जेल मे बाख़्तीगुल का साथवाला तख़्ता अफानासी फ़ेदोतिच का था। अफानासी फ़ेदोतिच ने कही से किताब हासिल की, अपने पैसो से पेंसिल और चोख़ाने कागज़ ख़रीदे और सेइत को मुल्ला जुनूस की भाति लिखना-पढ़ना सिखाने लगा। बाख़्तीगुल यह सब श्रद्धा से देखता।

मेइत उखड़ी-उखड़ी नींद सोता, नींद में खीझ कर ऊंची आवाज में बड़बड़ाता और आंसुओं से तर आखें लिये जागता। वह रातों को चौंककर उठता, कुछ अस्पष्ट-सा चीखता और उनींदी तथा बहकी-बहकी नजरों से सींखचोंवाली खिड़की के बाहर चांदनी को देखता हुआ मानो यह समझने की कोशिश करता कि खेमे में खिड़की कहां से आ गई... कभी कभी वह दिन के समय गुमसुम बैठा हुआ जेल की रोटी चबाता होता और उसके गालों पर जौ के दानों के समान आंसुओं की मोटी-मोटी और पीली-पीली बूंदें लुढकती दिखाई देतीं।

लड़के ने अपनी आंखों से यह देखा था कि कैसे उनके जाड़े के झोंपड़े के करीब जानिस कुल के लोगों ने उसके बाप, पकड़ में न आनेवाले धावामार को पकड़ा था!

सेइत मां की बाहों में बुरी तरह छटपटाता रहा था जो उसे पूरे जोर से पकड़े हुए गला फाड़ फाड़कर चिल्ला रही थी:

"ओ बदकिस्मत, देख तो वे तेरे बाप को मारे डाल रहे हैं, ओ बदकिस्मत!"

अब जेल की काली कोठरी में भी लड़के की आंखों के सामने वही तसवीर घूमती रहती—सोटे, कोड़े, घूंसे और बूटों की ठोकरें... वह इसे देखता और मां की बाहों में छटपटाता...

बाख्तीगुल बेटे को न तो सहलाता और न ही शान्त करने की कोशिश करता। हां, कभी-कभी जब वह रातों को बहुत ही जोर से चीखने लगता तो उसे जगा देता।

पर एक दिन जब बाक़ी सभी लोग सो रहे थे और सेइत जागकर सोने के तख़्ते के आसपास घूम रहा था तो बाप ने उसे प्यार से अपने पास बुलाया : –

"सेइतजान... बेटे, मेरे पास आओ तो..." उसने लड़के को अपने पास बिठाया और आंसू से भीगे हुए उसके गाल को सहलाया और बोला : "मैं बहुत दिनों से सोच रहा हूं और बहुत कुछ सोचता रहा हूं। जो कुछ मैंने सोचा है, वही तुम से कहता हूं। मेरे लाड़ले, तुम मेरे सबसे बड़े बेटे हो, इसीलिये मैं तुम से यह अनुरोध करता हूं कि तुम अपने इस चौखाने कागज़ पर ही नज़र गड़ाये रहा करो। अगर कोई तुम्हें इन्सान बना सकता है तो सिर्फ़ यह काग़ज़ ही! देखते हो न कि मेरा क्या हाल हुआ है। सो भी इसीलिये कि मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूं।"

"तुम निर्दोष हो," सेइत जोश से फुसफुसाया। "ख़ुद उन्हीं ने... उन्हीं ने... तुम्हें!.. मुझे सब कुछ मालूम है!"

"सब कुछ नहीं, मेरे लाल! पढ़-लिख जायेगा तो क़ाइयों और क़ाज़ियों को उनकी हक़ीक़त बता देगा। वे तेरा, मेरे जैसा हाल नहीं कर पायेंगे... तेरी आंखें खुल जायेंगी और तू दूसरों की आंखें खोल देगा। यह मेरे बस की बात नहीं, मगर तू ऐसा कर सकता है, तुझे ऐसा करना चाहिये! इस चौख़ाने काग़ज़ में अपनी सारी शक्ति लगा दे... इस से अधिक तुझे कहने को मेरे पास कुछ भी नहीं है। न मेरे पास दिमाग़ है और न तालीम ही जो मैं तुझे दे सकूं।"

बाख़्तीगुल के पीले गाल पर आंसू की एक बूंद ढलक आई। उसने उसे पोंछा और सेइत को दूर हटा दिया।

"अब जा, अपने कागज़ों में मन लगा।"

इस बातचीत के बाद सेइत ने नींद में रोना और चीख़ना-चिल्लाना बन्द कर दिया।

अफ़ानासी फ़ेदोतिच् बड़ा ख़ुशमिज़ाज आदमी था, कभी उदास नहीं होता था। वह सेइत का हाथ पकड़ कर उसे हर दिन सूखी घास से ढके जेल के अहाते में घुमाने के लिए ले जाता और वहां उसके साथ दौड़ने की होड़ करता।

उसी के साथ मिल कर सेइत अपने बाप और अन्य लोगों के लिए चाय का पानी उबालता। बाप को चाय पीना बहुत पसन्द था।

एक दिन रूसी ने अपनी नीली आंख झपकाते हुए लड़के से पूछा:

"किस सोच में डूबे हो प्यारे सेइत? बाहर वसन्त आ गया... शायद गांव की याद सता रही है? आज़ादी से घूमना-फिरना चाहते हो? अरे, चुप क्यों हो?"

लड़के ने उदासी से सिर हिला दिया।

"नहीं, अफ़ानासी चाचा... मन नहीं करता..."

"झूठ क्यों बोलते हो? ऐसा नहीं हो सकता।"

"यहां ज़्यादा अच्छा है, अफ़ानासी चाचा... यहां ज़्यादा अच्छा है..."

बाख़्तीगुल दीवार की ओर मुंह किये हुए लेटा था, अपनी कुछ-कुछ पकी हुई मूंछों को काट रहा था, गले को हाथ से दबा रहा था।

"मेरे नन्हे, मेरे प्यारे... मेरी आंखों के तारे..." वह बेटे के बारे मे सोच रहा था।

अफ़ानासी फेदोतिच ने लड़के को हाथों मे उठा लिया, उसे अपनी छाती से चिपका लिया। लड़के ने छूटने की कोशिश नही की।

"सुनते हो न भाइयो, क्या कह रहा है यह लड़का? ओह सेइत, प्यारे सेइत! .. कसम खुदा की, इन शब्दों से तुमने मेरी जान निकाल ली... जानते हो कि सब से भयानक बात क्या है? वह यह कि उसने किताबो से नही सीखे हैं ये शब्द!" अफानासी सेइत को छाती से लगाये हुए कोठरी में इधर-उधर घूमने लगा।

इसी तरह वे जेल में रहते गये, दिन बीतते गये और राते गुजरती गई।

शान्त, मन लगाकर पढ़नेवाले और समझदार सावले बालक ने ढेरों ढेर काग़ज़ काले कर डाले। अफानासी चाचा उसे लिखना, मुस्कराना और वह कुछ देखना सिखाता था जो उसका बाप नही देख पाया था—भावी जीवन का आलोक।

और वाल्लीगुल इन्तजार कर रहा था। वह इन्तजार कर रहा था मुकदमे का, निर्वासन का...
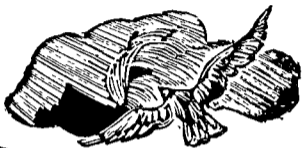
पाठकों से

प्रगति प्रकाशन इस पुस्तक की विषय-वस्तु, अनुवाद और डिजाइन के बारे में आपके विचार जानकर अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमे बड़ी प्रसन्नता होगी। कृपया हमें इस पते पर लिखिये:

प्रगति प्रकाशन,
२१, जूबोव्स्की बुल्वार,
मास्को, सोवियत संघ।

प्रगति प्रकाशन, मास्को की नयी हिंदी पुस्तकें

वसील बीकोव, प्यार और पत्थर

वसील बीकोव एक युवा बेलोरूसी लेखक हैं। उनका यह नया उपन्यास १९४१–१९४५ के जर्मन नात्सीवादविरोधी युद्ध की मर्मस्पर्शी घटनाओं पर आधारित है। इसके मुख्य पात्र – नौजवान सोवियत सैनिक इवान तेरेश्का और इतालवी तरुणी जूलिआ नोवेल्ली – आस्ट्रियाई आल्प पर्वतश्रेणियों में एक नात्सी बंदी शिविर में क़ैद हैं। उनके प्रेम की यह नाटकीय गाथा ऐसे साहस से ओतप्रोत है, जिसे नात्सी शिविर की यातनाएं भी नहीं तोड़ पाईं।

आकार: ११ १ × १७ सें० मी० पृष्ठ संख्या: १९५

अर्कादी गैदार, चूक और गेक

'चूक और गेक' लेखक की सबसे प्रसिद्ध कृतियों में एक है। इसकी लोकप्रियता का प्रमाण यह है कि इसका फिल्मीकरण और ६० भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

चूक और गेक नाम के दो बालक मास्को से अपनी मां के साथ रेलगाड़ी में बैठकर सुदूर साइबेरिया में अपने भूविज्ञ पिता के पास जा रहे हैं। यात्रा में बालकों के आगे एक नया, विशाल और अद्भुत संसार उद्घाटित होता है। गैदार बड़े दयस्पर्शी और मनोरंजक ढंग से इस यात्रा का, बच्चों

की अपने पिता से भेंट का और उनकी शरारतों का वर्णन करते है।

पुस्तक मे प्रसिद्ध चित्रकार द० दुवीन्स्की के बनाये चित्र हैं। आकार: १७×२२ सें० मीं० कपड़े की पक्की जिल्द पृ० सं० :७१

हीरे-मोती, सोवियत संघ की लोककथाएं

कहावत है: "गीतों से किसी जाति के दिल का पता चलता है और लोककथाओं से उसकी आशाओं का"। इस पुस्तक में सोवियत संघ मे रहनेवाली जातियों की सर्वश्रेष्ठ कथाओं मे से कोई चालीस दी गई हैं–रूसी परी कथाएं, व्यग्यपूर्ण उक्रइनी कहानिया, सोवियत पूर्व की जातियों की रंगीन कथाएं और उत्तर की जातियों की मनोरम लोककथाए।

पुस्तक मे व्लादीमिर मीनायेव के बनाये अनेक चित्र हैं, जिनमे से दस रंगीन हैं।

आकार: १७×२२ सें० मी० पृ० सं० २५५